श्रीकृष्ण सन्देश
वर्ष १०
अङ्क ८
श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंघ, मथुरा

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः ॥

अनुक्रमणिका

श्रीकृष्ण-सन्देश अगस्त १९७५

भगवान वासुदेव

(श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र')

वार्षिक शुल्क : १० रुपये | आजीवन शुल्क : १५१ रुपये

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासङ्घ, मथुराके लिये सुदर्शनसिंह 'चक्र' द्वारा सम्पादित, सत्येश पाठक द्वारा प्रकाशित एवं हर्ष गुप्त द्वारा राष्ट्रीय प्रेस, मथुरामें मुद्रित ।
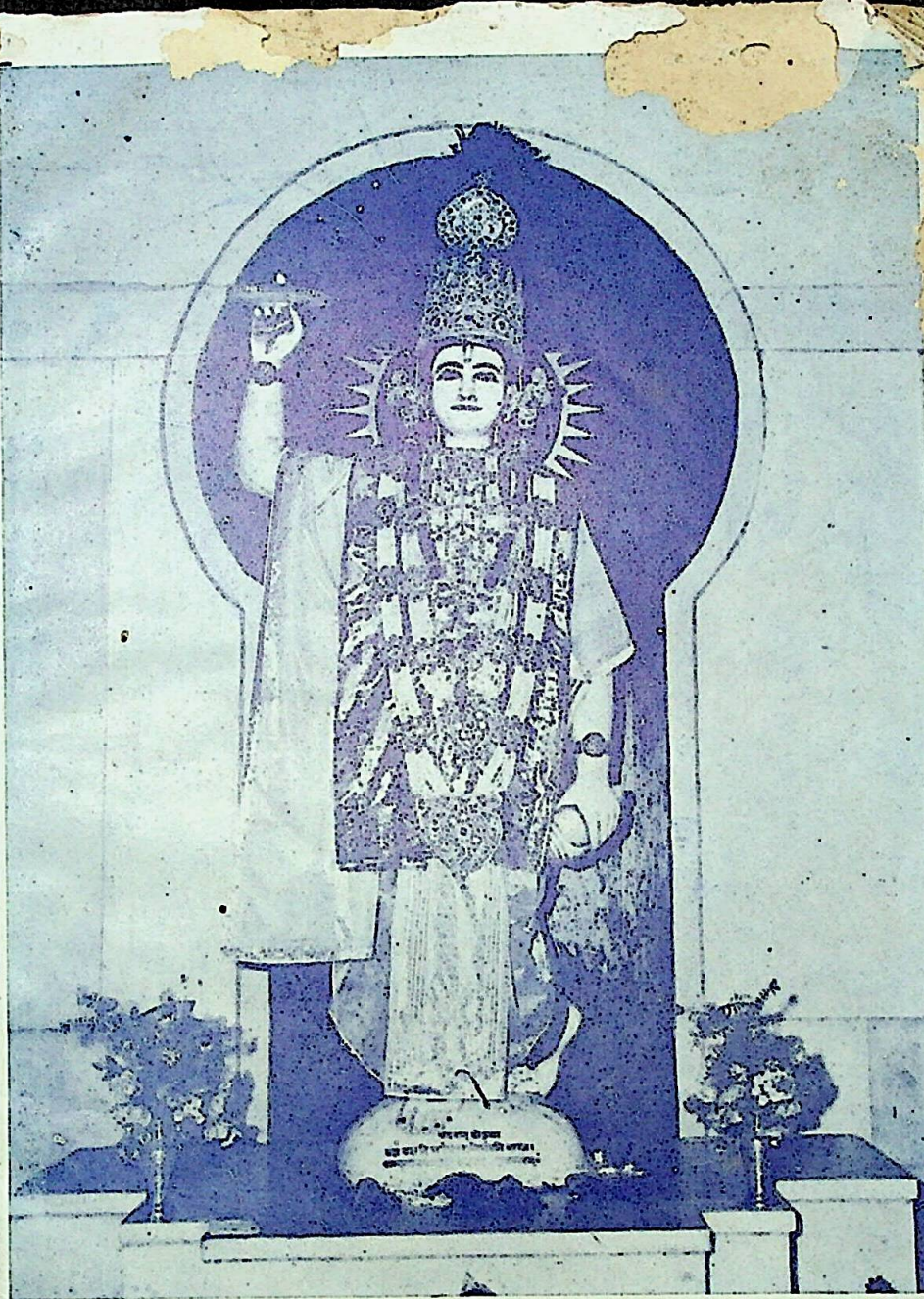
भगवान श्रीकृष्ण

गीता मन्दिर (बिरला मन्दिर)

मथुरा-वृन्दावन मार्ग

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति प्रधान
मासिक पत्र

श्रीकृष्ण-सन्देश

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

प्रवर्तक
पुण्यश्लोक श्री जुगलकिशोर बिरला

वर्ष १०] मथुरां, श्रीकृष्ण संवत् ५२०० अगस्त १९७५ ई० [अङ्क ८

आताम्रपाणिकमल प्रणयिप्रतोद-
मालोल हार मणिकुण्डल हेमसूत्र ।
माविः श्रमाम्बुकणमम्बुद्नीलमव्या-
दाद्यं धनञ्जयरथाभरणं महो नः ॥

—कृष्णकर्णामृत

शाश्वत् अभयदान के व्यसनी
अरुण कमलकर कशा लिये हैं !
नित्य अचल-निज स्वर्णसूत्र,
मणि-कुण्डल, माला चपल किये हैं ।
निर्विकार घनश्याम प्रेमवश
श्रमसीकर श्रीतन पर आये ।
यही पार्थ-रथ आदि आभरण
ज्योतिर्मय हमको अपनाये ॥

सन्देश-चिन्तन

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ गीता १२·४ ॥

अन्वय—(ये) इन्द्रियग्रामं सन्नियम्म सर्वत्र समबुद्धयः सर्वभूतहिते रताः (अव्यक्तं पर्युपासते) ते मामेव प्राप्नुवन्ति।

सरलार्थ जो इन्द्रिय-समूहको भली प्रकार निमन्त्रणमें रखकर सर्वत्र समबुद्धि रखने वाले, समस्त प्राणियोंके हितमें लगे ,अव्यक्तकी पर्युपासना करने वाले हैं, वे मुझे ही प्राप्त करते हैं।

विशेष—अव्यक्त अर्थात् निर्गुण निराकार परमात्माकी जो पर्युपासना करते हैं, उनके लिये भगवत्प्राप्ति कब सम्भव होती है, इसमें कुछ शर्तें भगवानने लगा दीं— १. समस्त इन्द्रिय-समूह भली प्रकार नियन्त्रणमें हो। २. सर्वत्र समबुद्धि हो। ३. सर्वभूत हितमें रत हो।

व्यक्त के पर्युपासक के लिये नित्ययुक्त होना और परम श्रद्धायुक्त होना आवश्यक था ; क्योंकि सगुण साकार परमात्मा श्रद्धैकगम्य है और उसमें मन लगा रहना चाहिये।

निर्गुण निराकार तत्त्व अचिन्त्य, अनिर्देश्य है और जब वह अद्वितीय है तो उसे अहंके रूपमें ही कहा, बोला, या अनुभव किया जा सकता है। इस अनुभूतिमें यदि यह अनुभव अपरिपक्व है, यह दोष आना सम्भव रहता हैं कि—'मैं देह नहीं, इन्द्रिय नहीं, मन नहीं, तब ये चाहे जो करें, मेरा इनसे क्या सम्बन्ध, इस तर्काभासमें व्यक्ति पड़ जाय।'

मन-इन्द्रिय जड़ हैं। चेतनके तादात्म्यके बिना ये क्रियाशील ही नहीं होते। अतः स्वयं ये चाहे जो कर नहीं सकते और देहासक्ति रहते 'मन-इन्द्रिय चाहे जो करे यह कहना चार्वाकके देहात्मवादसे पृथक् नहीं है। इसलिये ज्ञान-मार्गका अधिकारी ही वह है जिसमें विवेक-वैराग्य, मुमुक्षा और षड्-सम्पत्ति अर्थात् शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान पूर्णतः आ गये हैं।

ऐसे संयमीकी सर्वत्र समबुद्धि होनी चाहिये और व्यवहारमें उसे अपने सुख-सम्मानसे निरपेक्ष सब प्राणियोंके हितमें लगा होना चाहिए।

'ते प्राप्नुवन्ति मामेव—वह मुझे ही पाते हैं' से स्पष्ट कर दिया कि वह अव्यक्त अनिर्देश्य अचिन्त्य तत्त्व भी मैं ही हूँ।

मधु-सञ्चय

हमारा धोबी रामभरोसे काफी विश्वस्त था। एक दिन पिताजीने पैंट, कमीज उतारी और जेवें टटोले बिना नौकरसे कह दिया कि धोबीके कपड़ोंमें डाल आ। दूसरे दिन रामभरोसेको कपड़े दे दिये गये।

उसी शाम करीब चार बजे पिताजीका दफ्तरसे फोन आया कि मैं अपना बटुआ कल रात पैंटसे निकालना भूल गया था। पिताजीसे पूछा कि बटुएमें कितने रुपये थे?

वे बोले, "चार, साढ़े चार सौ होंगे।"

मैंने घबरा कर कहा, "पिताजी, कपड़े तो सुबह धोबी ले गया है। आप कहें तो सुमन (मेरा छोटा भाई को धोबीके घर भेज दूँ?"

वे बोले, "भेज दो।"

तुरन्त सुमनको धोबीके घर दौड़ाया, वह आधा घंटे बाद आकर बोला, "जीजी, रामभरोसे तो कपड़े भट्टी पर चढ़ाकर न मालूम कहाँ चला गया है, उसके घर वालोंको कुछ पता नहीं।"

अभी हम बात कर ही रहे थे कि दरवाजेकी घंटी बजी। मैं झल्लाती हुई दरवाजा खोलने गयी। सामने रामभरोसे खड़ा था। मेरे कुछ पूछनेसे पूर्व ही वह बोला, "मुन्नी, कपड़ा देखकर डाला करो! ये बाबूजीका बटुआ सँभालो और रुपये गिन लो। मैंने तो भट्टी पर चढ़ा दिये थे, बाद में अचानक गीली पैंटकी जेब पर हाथ गया तो जेब भारी लगी।"

मैंने रामभरोसेको दसका नोट इनाममें देना चाहा, पर उसने इनाम लेनेसे इनकार कर दिया।

—मंजु सोढ़ानी

श्री मदनमोहन मिश्र अपने कालिजका परीक्षा-फल सुनाकर घर लौटे। उनका इकलौता पुत्र अनुत्तीर्ण हो गया था! पत्नीने काफी खरी-खोटी सुनायी। उन्होंने अगले वर्ष उसके अच्छे डिवीजनमें पास होनेकी बात कह टाल दिया।

अगले वर्ष भी लड़का अनुत्तीर्ण ही रहा। पत्नी ने इस बार झुँझला कर कहा, "आपने पिछली साल कहा था कि अगले वर्ष जरूर अच्छी डिवीजनसे पास करवा दूँगा! अच्छी याददाश्त है!"

मिश्रजीने मेरे सामने ही पत्नीसे कहा, "मैं भूला तो बिलकुल ही नहीं था। घर पर आकर स्वयं मैं भी ठीक तुम्हारी ही तरहसे सोचता हूँ और चाहता हूँ कि अपने लड़केको किसी तरहसे पास करवा दूँ क्योंकि यहाँ मै सिर्फ उसीका पिता हूँ। पर जब मैं कालिजमें जाता हूँ, तो प्रिंसिपलके नाते सभी छात्र मुझे अपने ही पुत्र लगने लगते हैं—पास होने वाले भी, फेल होने वाले भी। फिर मैं किसीके साथ पक्षपात कर ही कैसे सकता हूँ!"

—दुर्गाशंकर त्रिवेदी

रूपक कथा—

याचक और अयाचक

—श्रीरावी

एक सिद्ध गुरुके दो शिष्य अपने पार्वत्य आश्रमसे उतरकर वस्तियोंके प्रदेशमें आये। आत्म-निर्वाहके साथ-साथ लोक-सेवा ही उनके इस प्रवासका उद्देश्य था। योग और चमत्कारकी शक्तियाँ दोनोंको एक स्तर तककी प्राप्त थीं। समय भौतिकतावाद और दैहिक भोगवादका बढ़ आया था, अतएव योग और अध्यात्म की ओर लोगोंका ध्यान आकृष्ट करना इन दोनों साधकोंको अभीष्ट था—गुरुका आदेश भी ऐसा ही कुछ था।

मैदानमें उतरकर दोनों साधकोंने अलग-अलग वस्तियोंकी राहें अपनायीं। पहला साधक प्रतिदिन, प्रायः तीसरे पहर, किसी गांवमें रुकता, चौथे पहर तक कुछ द्वारोंकी फेरी लगाकर अपने खानेभरको अन्न प्राप्त करता और साँझको गाँव के किसी प्रमुख चौवारेमें लोगोंको आमन्त्रित कर धर्म और ज्ञानकी चर्चा करता। जैसा कि समय आ गया था, दान धर्म और ज्ञान-चर्चामें लोगोंकी आस्था घट गयी थी, अतएव कठिनाईसे ही उसे भरपेट भोजन और बहुत थोड़े ही धर्म-ज्ञानके श्रोता मिल पाते थे। अपनी चर्चाओंमें वह बताता कि उसे रोटीकी ही नहीं, प्यार और प्रतिष्ठाकी भी आवश्यकता है; और यह उसीकी नहीं, हर मनुष्यकी और उन श्रोताओंमेंसे भी हर-एककी आवश्यकता है।

दूसरा साधक भी प्रतिदिन प्रातः पौ फटते किसी नये गाँवमें प्रकट होता। गाँवके बीच किसी चौवारेमें वह सिरके बल खड़ा हो जाता। भोरसे साँझ तक सारे दिन वह इसी प्रकार शीर्षासनस्थ रहता। हठयोग द्वारा उसने शरीरके रक्त-प्रवाहको जहाँ चाहे रोक देने या ऊपर-नीचे चलानेका अभ्यास कर लिया था, अतएव यह लम्बा शीर्षासन उसके लिये सुगम था। बीच-बीचमें अपनी लघिमा सिद्धि द्वारा वह शिर समेत पूरे शरीरको हाथ-दो-हाथ धरतीसे ऊपर उठाकर एकत्र भीड़को और भी अधिक आश्चर्य-चकित कर देता था। बिना बोले, बिना माँगे फल-फूल, पकवान-मिष्ठान्न और धन-मुद्राओंका ढेर साँझ तक उसके चारों ओर लग जाता। कुछ ही दिनोंमें गाँवोंके बीच बसे एक बड़े नगरसे इस साधकका महल बन गया और रोटी तथा पकवान ही नहीं, बालवृद्धसे लेकर सुन्दरी युवतियों तक का प्यार और निर्धन

से लेकर महाधन तक व्यक्तियोंसे विपुल प्रतिष्ठा उसे अपनी सम्पत्तिके बल पर मिल गयी।

देहका समय पूरा होने पर ये दोनों साधक स्थूल शरीर त्यागकर भुवर्लोकमें पहुँचे। कर्म नियमके अनुसार इन्हें अपना-अपना काम उस सूक्ष्म लोकमें भी पुनः जारी करनेका अध्यादेश मिला। पहले साधकके अनुकूल भुवर्लोककी बस्तियोंमें धर्म-ज्ञान-चर्चाका पूरा उपयोग था पर शीर्षासन और लघिमाके चमत्कारका वहाँ के निवासियोंके लिये कोई आकर्षण तथा उपयोग नहीं था, और स्थूल रक्तके अभावमें वह क्रिया अत्यन्त नीरस एवं मनोव्यथाकर भी थी।

कहते हैं कि दोनों साधक वैधानिक आदेशसे बँधे अपने-अपने कार्यमें लगे हैं और इस प्रक्रियामें दैहिक जीवनसे दूने, अभी डेढ़ सौ वर्षका समय उन्हें भुवर्लोकमें बिताना है!

याचककी अपेक्षा चतुर अयाचक को—इस कथाके प्रथम साधककी अपेक्षा दूसरे जैसेको—अधिक सम्पत्ति और प्रतिष्ठा संसारमें प्रायः मिल जाती है, किन्तु याचकता ही समाजके निर्माण और निर्वाहकी स्वस्थ, सहज परम्परा है और यही अल्पधनोंका महाधन बनानेकी सुगम मार्ग है।

—※—

एक दिन

एक दिन जीवनका सबसे महत्वपूर्ण,
एक दिन जीवनका सबसे महान है।
एक दिन जीवनका बताने वाला,
एक दिन जीवनका करता कल्याण है।
कौनसा दिन वह जीवनमें परम धन्य है?
कौन दिन जिसका भला इतना सम्मान है?
जानते नहीं हैं उसे सचमुच अब तक क्या?
आजका ही दिन वह जो आज वर्तमान है।

सत्य घटना—

योगक्षेमं वहाम्यहम्

सुश्री आशा 'कपिध्वज'

संध्याके पांच बजतेही शांताका मन प्रसन्न हो उठा। वह सोचने लगी कि कुछही समय बाद उसकी बहू और नाती आने वाले हैं। अपने मंदो देख वह कितना प्रसन्न होगी, इसका वह स्वयं अंदाज नहीं लगा पा रही थी। सुनहरी जरीकी किनार-वाली गुलाबी साड़ी पहने कभी वह कुआँ तक जाती और कभी बरामदेमें आकर तखत पर बैठ जाती। उसकी प्रसन्नताका सागर हिलोरें मार-मारकर किनारोंको भी आत्मसात् करने पर तुला हुआ था। यदि जोरसे हवा चलती थी तो वह समझती थी कि शायद मेरी प्रिय बहू आ गयी। एक माहसे जो झूला उतार दिया गया था, उसे आज शोमाने पुनः अपने भतीजेके लिये डाल दिया। नन्हा श्री अपनी तोतली भाषामें मातासे पूछता था कि —'आज क्या हमारा मंदो आ जावेगा ?

शांताके चेहरे पर मुस्कुराहट तैर जाती और वह कह उठती—"हाँ भैया ! आज तुम्हारी भाभी और मंदो आ रहे हैं।"

सहसा निनकूने घरमें प्रवेश किया। शांताने उत्सुकतावश पूछा—"सौ० बहू आ रही है क्या ?'

निनकू मौन रहा। बच्चोंने उसे घेर लिया। मुँहमें चिपटी अधजली बिड़ी एक तरफ फेंकते हुये निनकू बोला—"नहीं भुआ ! भाभीकी बिदा उन लोगोंने नहीं की।"

इन शब्दोंको सुनकर शांताके पैरों तलेकी जमीन खिसक गयी। वह आग-बबूला हो उठी। उसका चेहरा लाल हो गया। वह भौंहें सिकोड़ते हुए बोली—'मेरे पत्रका उन पर कोई असर नहीं हुआ ?'

'तुम्हारे पत्रने ही तो सब काम बिगाड़ दिया, भुआ !' निनकू मुस्कुराते हुये बोला।

"लेकिन, मैंने पत्रमें लिखा ही क्या था ? यही तो लिखा था कि प्रिय बहू ! तुम यहाँ आ जाओ ! इसमें मैंने क्या ज्यादती की ?" पासमें रखी स्टील की हरी कुर्सी पर बैठते हुये शांताने कहा।

निनकू तपाकसे बोला—'ठीक है भुआ। आपने कोई ज्यादती नहीं की, पर भाभीकी माता शकुनने साफ-साफ शब्दोंमें कह दिया है कि मुझे जब जँचेगा तब मैं

अपनी पुत्रीकी बिदा करूंगी। ससुराल वालोंका इस समय मेरी लड़की पर कोई अधिकार नहीं है ! जाकर कह देना अभी साल-छैः महीने मैं बिदा नहीं कर सकती।"

शोभा, जो बहुत देरसे चुपचाप सब सुन रही थी, पूछ बैठी—"हमारी भाभीने क्या कहा ?''

पहले तो भाभी बहुत रोयी। फिर वे कुछ कहना चाह रही थीं कि उनकी माँने उन्हें डाँट दिया और कहा 'तू चुप रह ! मायकेमें मैं जो करूंगी वह होगा ! मैं तुझे जहाँ भेजूँगी वहाँ जाना पड़ेगा माँ के शब्दोंको सुनकर भाभी चुप हो गयी।' बीड़ी सुलगाते हुए निनकू बोला।

अपने नौकरके मुँहसे इन शब्दोंको सुनकर शांताको बहुत दुख हुआ ! वह अपने पतिके घर आनेकी राह देखने लगी, थोड़ी देर बाद उसके पति चीचलीसे वापिस् घर लौटे।

पति आकर बैठ भी न पाये थे कि शांताने उन्हें पूरी राम-कहानी सुना डाली। भगवद्भक्त पति सबकुछ चुपचाप सुनता रहा। पतिकी चुप्पीने अग्निमें घीका काम किया। वह क्रोधावेशमें न जाने क्या-क्या बड़बड़ाती रही और पतिको भी भला-बुरा कहनेसे बाज नहीं आयी। पति फिर भी चुप रहे। अन्तमें जब उनसे न रहा गया तो "यह सब प्रभु का खेल है" कहकर पुनः भगवद्भक्त चुप हो रहा।

पत्नी तो जैसे इसी अवसरकी तलाशमें थी। उसने आव-देखा न-ताव और कह उठी—"तुम्हें तो हरजगह भगवान् ही भगवान् दीखते हैं। जब देखों तब भाटोंकी तरह भगवान्के ही गुन गाया करते हो। घरमें क्या हो रहा है इसकी चिंताही नहीं है ?" प्रत्युत्तरकी अपेक्षा बिना ही उसने कहना आरम्भ रखा—"१७ फरवरीको पाणिग्रहणके पश्चात् बहू पर हमारा अधिकार हो गया है। मुझे बहूकी माताके असद्व्यवहारसे काफी दुःख है। तुम्हें आज ही खकरिया जाकर बहूको लिवाकर लाना होगा ?'

भगवद्भक्त विनम्र स्वरमें बोला—"संसारमें समस्त बुराइयोंकी जड़ यह अधिकार-भावना ही है। इस हमारे शरीर पर ही जब हमारा अधिकार नहीं है तो फिर औरों पर हमें क्या अधिकार ? जो कुछ हो रहा है और होगा, उसे प्रभुकी लीला समझकर ही हमें मौन हो जाना चाहिये, इसीमें हमारी भलाई है।"

'जब देखो तब 'प्रभुका खेल'—'प्रभुका खेल' कहते रहते हो। गृहस्थीमें ऐसे काम नहीं चलते। तुमने ऐसा कौनसा पाप किया था जिसका फल आज मिल रहा है ?" साड़ीके पल्लेको सिर पर खींचते हुए शांताने कहा।

भगवद्भक्त गंभीरतासे बोला—'तुम्हें याद है आजसे कुछ समय पूर्व बहूके पिताने मुझे लिखा था कि आप अपने आत्मबलके प्रभावसे मेरा स्थानांतरण करवा दीजिये ? फलस्वरूप मैंने उन्हें लिख दिया था कि आपका स्थानांतरण हो गया है। आदेश भर आनेकी देर है, पत्र लिखनेके बाद मुझे अपने आप पर क्रोध आया था, पर मैं विवश रहा क्योंकि पत्र पोस्ट हो चुका था। मेरे इस अहंकारका परिणाम मुझे अवश्य मिलेगा, यह मुझे विश्वास था। आज तुम्हारे शब्दोंको सुनकर मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि यह सब मेरे दर्पदलनके लिये ही हो रहा है।'

'यह तो ठीक है, पर अब बहू कैसे आवेगी, इसका भी कुछ विचार किया है ?' व्यंग्य करते हुये शांता बोली।

'यदि तुम सचमुचमें बहूकी माता पर अप्रसन्न हो, और बहूको यहाँ शीघ्रही बुलाना चाहतीहो तो मैं कहूँ वह करो ? बोलो मंजूर है ?' भक्त बोला,

"हाँ ! मंजूर है। बोलो, मुझे क्या करना चाहिये ?" शांताने जवाब दिया, 'तो ठीक है तुम श्रीहनुमानजीके समक्ष 'दीनदयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी' सम्पुट सहित, सुन्दरकाण्डके '१०८ पाठ करो। पाठ समाप्त होते ही तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। इसमें संशय नहीं है।" अपने सिर पर हाथ फेरते हुए भक्त बोला।

विधिका विधान निराला है। उसकी कृपा और इच्छाके बिना हम कुछ भी नहीं समझ पाते। अहंकारवश भले ही प्रभुको भला-बुरा कह सुखी होनेका प्रयास करें, पर यह निश्चित है कि प्रभुकी सत्ताही सर्वोपरि है। प्रभु करुणावरुणालय हैं, दीनबन्धु हैं एवं भक्तानुगामी हैं। उन्होंने भक्तोंके लिये क्या-क्या नहीं किया ? वे स्वयं कहते हैं—

"अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

—श्रीम. भा. ९. ४. ६३

आज भक्त नर्मदा प्रसादके परिवारकी रक्षा करने के लिये भी प्रभु व्यग्र हो रहे थे। शांताके द्वारा किये गये सुन्दरकाण्डके १०८ पाठ भी पूर्ण हो चुके थे। हवन सामग्री एकत्रित हो रही थी। श्री सत्यनारायण भगवान्‌की कथाका भी आयोजन था। शांता बड़ी प्रसन्नतापूर्वक कथाजीका सामान जुटा रही थी। समूचा घर हर्षोल्लास-से मुखरित हो रहा था। बच्चे बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक वन्दनवार सजा रहे थे। किस्सू और श्री चुन-चुन कर कनेरके सुर्ख लाल पुष्पोंकी मालायें तैयार कर रहे थे। कथा-

वाचक पं० हरिशंकरजी भी अपने आसन पर विराजमान थे। पूजनका कार्य आरम्भ ही होने वाला था।

ठीक इसी समय एक बैलगाड़ी आकर कुएके पास खड़ी हो गयी। लल्लनने आकर सभीको प्रणाम किया। शोभाने दौड़कर अपनी प्रिय भाभी और भतीजे मंदोको गाड़ीसे नीचे उतारा। मंदोकी हँसमुख मुद्रा और किलकारियोंने सभीको आनन्दविभोर कर दिया। लल्लन भगवद्भक्तसे बोला—"वैसे तो मेरी अम्माका विचार विदा करनेका नहीं था, पर हम लोग कल शामकी गाड़ीसे सागर जा रहे हैं, क्योंकि पिताजीका ट्रांसफर हो गया है इसीलिये हमारी अम्माने यह उचित समझा कि सकुशल ससुराल पहुँचा दिया जावे।"

लल्लनके शब्दोंको प्रसन्नताके वातावरणमें केवल भक्तको छोड़कर किसीने नहीं सुना। भक्त गद्गद् हो गया। भावावेशमें, उसके नेत्र सजल हो गये। वह अपने इष्टकी इस अहैतुकी कृपाका स्मरण कर बरबस कह उठा—

'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्यभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥'

—श्री म. भ. गीता ७. २२

—ॐ—

--असावधानी से चोट लगती है।

--असंयम से रोग होते हैं।

—अनजान में भूल होती है।

—लेकिन प्रकृति किसीकी असावधानी, असंयम, अज्ञान क्षमा नहीं करती। चोट का दर्द, रोग की पीड़ा, भूलसे हुई हानि सहनी-भोगनी ही पड़ती है।

--सावधान रहना, संयमित रहना, जानकारी प्राप्त कर लेना व्यक्तिका अपना दायित्व है।

गायका महत्त्व

अन्नकी उपज और प्राप्ति कम होनेके कारण लोगोंमें यह धारणा बढ़ रही है कि गोवंश मनुष्यका प्रतिद्वन्द्वी बन रहा है। अतः हमको मनुष्यकी रक्षाको प्राथमिकता देनी चाहिये। अपने आपको दयालु मानने वाले लोगोंकी भावना हैं कि गायोंको भूखा मारनेकी बजाय, उनकी दयाके रूपसे हत्या ही होने दी जाय। अर्थशास्त्रियोंकी धारणा है कि भारतवर्षमें गोवंशकी आबादी इतनी अधिक है कि जमीनके सीमित साधनोंसे उनका निर्वाह नहीं किया जा सकता। उनकी दूध देनेकी एवं भारढोनेकी शक्ति अत्यधिक कम है जिससे समाज व देशके लिये वह एक भार स्वरूप हैं, अतः एक निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार ऐसे बेकार पशुओंको नष्ट कर देनेसे, न केवल बोझ ही हल्का होगा वरन् इतनी विदेशी मुद्रा (Foreign exchange) की कमायी होगी जोकि हमारे देशकी सम्पूर्ण फौजके खर्चोंके लिये पर्याप्त होगी। अब हमें धैर्य एवं पक्षपातहीन होकर प्रत्येक पक्षको जाँच लेना चाहिये।

कृषि अनुसंधानकी भारतीय परिषद् (इण्डियन काउन्सिल आफ एग्रीकल्चर रिसर्च) ने गोवंशकी आवश्यकताके सम्बन्धमें 'गोवंश रक्षा एवं वृद्धि समिति' (केटल प्रिजरवेशन ऐण्ड डेवलपमेंट कमेटी) द्वारा दी गयी रिपोर्टके ९५ वें पृष्ठ पर इस प्रकार अपने विचार प्रकट किये हैं—

"यह ठीक ही कहा गया है कि गाय एवं काम करने वाले बैल अपनी धैर्यशील पीठके ऊपर भारतीय कृषिका सम्पूर्ण भार वहन कर रहे हैं। परन्तु आश्चर्यकी बात ही नहीं है अपितु यह देशके लिये दुर्भाग्यकी भी बात है कि अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन' (Grow more food campaign)—जो इतने वर्षोंसे चल रहा है—के अन्तर्गत भी खाद्य-उत्पादनार्थ पशु-समुदायकी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया। अभी तक इस आन्दोलनमें सिर्फ आंशिक सहायता द्वारा कृत्रिम खाद वितरण, ट्रेक्टरोंकी व्यवस्था, बेहतर बीज, सिंचाईकी सुविधा आदि पहलुओं पर ही ध्यान दिया गया है। यद्यपि ये सब जीजें भी आवश्यक हैं परन्तु ये अकेली कोई स्थायी समाधान नहीं निकाल सकतीं जबतब कि भूमि जोतनेकी मूल आवश्यकता —अच्छे बैल और ज्यादा दूध—पूरी नहीं हो पाती। यह तो सर्वविदित बात है कि गोवंश भारतीय कृषिसे कभी अलग नहीं किया जासकता। यह तो वास्तवमें भारतीय कृषिकी नींव है। यदि नींवको मजबूत न रखा जाय तो सम्पूर्ण इमारत ही ढह जायेगी। इसमें

कोई आश्चर्यकी बात नहीं कि इसी कारणसे 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन (Grow more food campagn) अभी तक अधिक सफल नहीं हो पाया है। गोवंशकी जितनी सम्वृद्धि होगी उतनी मात्रामें ही इसकी सफलता होगी। अतः अच्छे बैल और अधिक दूध प्राप्त करनेके उद्देश्यसे गोवंशका सुधार करना 'अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन' का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है और इसीलिये इसे प्राथमिकता दी जानी चाहिये। भारतवर्षमें गोवंशके १७ करोड़ ६० लाख पशु अर्थात् विश्वके लगभग एक तिहाई पशु हैं। ये अनेक प्रकारके प्रतिकूल ऋतुओं और वातावरणमें रहते हैं और यह प्रख्यात् सत्य है कि इनकी दूध देने एवं भार ढोनेकी क्षमता विश्वमें कमसे कम है। शताब्दियोंकी उपेक्षाके फलस्वरूप, अब इनका सुधार बहुत क्लिष्ट विषय बन गया है। इस समस्याकी विशालता तथा कठिनतासे, हमको विचलित होनेकी आवश्यकता नहीं, बल्कि इससे तो हमको इसकी विशालताके अनुपातके अनुसार अधिक मनोयोग एवं धैर्यसे इस समस्याका समाधान करनेके लिये संकेन्द्रित प्रयास करनेकी प्रेरणा मिलती है। अभी तक किये गये अनुसंधानोंके अनुसार पता लगता है कि अभी भी भारतीय गोवंशमें अधिक उत्पादनकी क्षमता है परन्तु उसके चारों ओरकी परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि जिसके कारण ही ये अपनी वंशगत क्षमताको पूरे प्रकाशमें नहीं ला पाते तथा उसकी वृद्धि नहीं कर पाते।"

अधिक क्षमताशील गोवंशके पशुओंकी रक्षाके लिये विशेष समिति (स्पेशल कमेटी आन प्रिजरविङ्ग हाई-यीलडिंग कैटल) द्वारा दी गयी रिपोर्टके प्रारम्भमें इस प्रकार उल्लेख हैं —

"प्राचीनतम कालसे गोवंश हमारे देशकी अर्थ-व्यवस्थामें विशेष योगदान देता रहा हैं। उनसे जमीन जोतकर तैयार करनेमें, कुओंसे पानी खींचनेमें, ग्रामीण क्षेत्रकी परिवहन सम्बन्धी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें, और अन्य प्रयोजनोंके लिये चालन-शक्ति (मोटिव पावर) मिलती रही है। उन्होंने मनुष्योंके पोषण आहारके लिये दूध एवं दूधसे तैयार अन्य सामग्री तथा जमीनके लिये खाद प्रदानकी है। अतः हमारे देशकी अर्थव्यवस्थामें-गोवंश मानवका सबसे बड़ा हितकारक रहा है।"

अमेरिकाके मिनेसोटा विश्वविद्यालयके डेयरी हस्वैंड्री विभागके भूतपूर्व मुख्याधिकारी तथा मिसूरी विश्वविद्यालयके डेयरी हस्वेण्ड्रीके भूतपूर्व प्राध्यापक श्री क्लेअरेंस-एच. एकल्सने कृषिमें गायकी महत्ताके बारेमें अपनी पुस्तक 'डेयरी कैटल एण्ड मिल्क प्रोडक्स' (प्रकाशक : मैकमिलन कं०, न्यूयार्क, तृतीय संस्करण १९४६) में इस प्रकार लिखा हैं —

"विश्वकी सर्वोत्तम एवं बहुमूल्य कृषि योग भूमिका काफी हिस्सा दुधारू

गायोंके पालनेके काममें आता हैं। यह एक सर्वविदित बात है कि वही देश सबसे अधिक समृद्धिशाली एवं शारीरिक व मानसिक रूपसे उन्नतिशील रहे हैं जहाँ दीर्घकाल-से गोपालन ही कृषिकी नींव रहा है।"

"जमीनका उपजाऊपन कायम रखनेका सबसे अधिक सरल तरीका यह है, अधिक संख्यामें पशुओंका पालन करके उनसे प्राप्त खादका उपयोग किया जाय।"

"यह भी देखनेमें आता है कि लगभग प्रत्येक स्थानके खेतों में यहाँ तक कि सम्पूर्ण देश भरके खेतोंमें जो उपजाऊपनकी अत्यधिक वृद्धि हुई है, वह पशुओंके पालन द्वारा प्राप्त खादके परिणाम स्वरूप हो पायी है।"

स्वर्गीय डा. पी. सी. रायके प्रथम और श्रेष्ठ शिष्य श्रीसतीशचन्द्रदास गुप्त महोदयने (The cow in india) नामक पुस्तक दो खण्डोंमें लिखी है। खादी-प्रतिष्ठान कलकत्ताने इस पुस्तकको, मई १९४५ में प्रकाशित किया है। स्वयं महात्मा गांधीने इस पुस्तककी 'प्रस्तावना' लिखी है जिसमें उन्होंने श्रीदासगुप्त महोदयको, इस विषयपर लेखन-अधिकारके लिये उपयुक्त व्यक्ति घोषित किया है तथा आगे चलकर उन्होंने कहा है कि श्रीदासगुप्त महोदयने पुष्टि कारक तर्कों द्वारा बड़े-बड़े विद्वानोंकी इस धारणाको निर्मूल कर दिया है कि भारतका गोवंश भूमिपर एक बोझ है तथा भूमिकी उपजमें मनुष्योंमें हिस्सा लेता है जो मनुष्योंके लिये हानिकारक है। श्रीदासगुप्त महोदयने गौकी उपयोगिता, इन रूपोंमें प्रकट की है :—(१) दूध देने वाली (२) हल जोतने वाले बैल उत्पन्न करने वाली, (३) हमारे खेतोंको खाद प्रदान करने वाली, (४) मरनेके पश्चात् खाल तथा हड्डी देने वाली, (५) भारतके खेतोंकी जोतनेके लिये, इंजनसे अधिक बैलोंकी श्रेष्ठता भी सिद्धकी है, तथा (६) गौकी भैंससे अधिक श्रेष्ठता भी प्रमाणितकी है।

———

देह तक जोर है

शासकका, शत्रुका।
डाकूका, देवताका॥
भूत-प्रेत सबका।
देहका ममत्व त्याग
परम स्वतन्त्र हम—
ईश्वर भी कुपित हो बिगाड़ेगा
किसका ?

श्रीश्रीविष्णुप्रिया प्राकट्य

श्री राधेश्यामजी बंका

नीरव दिशि-दिशि नीरव निशीथ, नीरव था नभका तारकदल
नीरव नभ-गंगाके कण-कण, नीरव था नभका नीलाञ्चल ।
उस नीरवतामें था स्पन्दित, नीरव संलाप मृदुल अविरल,
निशिका निशीशका नेह छके, दो हृदयोंका अतिशय निश्छल ।।

दो अधर हिले चुपचाप खुले, नभ-गंगाके नव पनघटपर ;
दो हृदय इधर उन्मुक्त खिले, नवद्वीप - पार्श्विनीके तटपर ।
था सजा शयन-गृह, शय्यापर विकसित पुष्पोंकी नव चादर,
शय्यापर पुष्पोंका वितान, शय्यापर पुष्पोंकी झालर ।।

धूम-गंधसे शुचि शोभासे, मुखरित था शयनागार सकल ;
शोभाकी शोभा बढ़ी और पा विमल स्नेहकी सुरभि विमल ।
दो स्नेही हृदयोंसे विकसित जो स्नेह लहरियाँ थीं निर्मल,
उनकी सुषमासे शयन-कक्षकी शोभा थी प्रतिपल बोझिल ।।

उस शयन-कक्षकी शय्यापर थे परम सुशोभित नित्य युगल ;
श्रीविष्णुप्रिया चैतन्य गौर, प्रेमी-प्रेमास्पद नित्य नवल ।
दोनों ही दोनोंमें डूबे, दोनों ही सुखदाता अविरल,
थीं पैर दबाती विष्णुप्रिया, चैतन्य-हृदय पुलकित पल-पल ।।

कुछ कौतूहल, कुछ उत्सुकता, कुछ जिज्ञासाकी मधुर लहर—
उभरी धीरे-से मन्द-मन्द श्रीविष्णुप्रिया - मुख - मण्डलपर ।
उस नीरवतामें छलक पड़ा भीना-भीना-सा नीरव स्वर,
प्राणोंने पूछा मौन-मौन—"क्या मैं ही राधा हूँ ? प्रियवर" ।।

प्राणोंका नीरव प्रश्न सुना—नवद्वीप-पार्श्विनी सुरसरिने,
उस शयन-कक्षके कण-कणने, चैतन्य गौरके अन्तरने।
मौन प्रश्नका दिया मौन उत्तर था अधर-अरुणिमाने,
चैतन्य गौरके अधर-विहारी, नित्य विलासी मधु स्मितने॥

"प्रियतमे! भूल क्या गयीं स्वयंको, मुझको, इतनी भोली तुम?
हम नित्य सङ्ग, सम्वन्ध नित्य, मैं माधव हूँ, हो राधा तुम"।
प्राणोंने पूछा पुनः प्रश्न—"फिर कहाँ तरणिजा-धार परम?
त्यागी क्यों वह स्नेहिल यमुना? सुरसरिता-तीर वसे क्यों हम?"॥

मूक प्रश्नका मूकोत्तर था तुरत दिया फिर मधु स्मितने—
"पायी मुक्ति परम दुर्लभतम, सुरतरंगिणीसे जगने।
उस मुक्तिदायिनी सत्ताके कण-कणमें आये हैं भरने—
क्रन्दन-ज्वाला, जिसमें जल-जल, नित ज्वलित ज्वालके स्नेह सने॥

"तो क्या मुझको जलना होगा क्रन्दनकी ज्वालामें? प्रियतम!
क्या मुझको अब वहना होगा, आँसूकी धारामें हरदम?"
"हम तुम एक, अतः प्राणाधिक प्रियतमे जलो क्यों केवल तुम?
क्रन्दन-ज्वाला में साथ-साथ अनवरत जलेंगे दोनों हम॥"

शब्दातीत सरल जिज्ञासा व्यक्त हुई जो बिना शब्द ही,
सरस गरलमय समाधान भी प्राप्त हुआ जो अनायास ही।
सुना शयनगृहने, शय्याने, सुरसरिने अन्दर-अन्दर ही,
नशि-निशीश, नभ-गंगा, नभके नीलाञ्चलने मौन-मौन ही॥

× × ×

जाने कितने तारे टूटे नभके विस्तृत नीलाञ्चलसे;
जाने कितने अश्रु बह गये, सुरतरंगिणीके कपोलसे।
जाने क्यों कहता फिरता है, व्यथित समीरण अपने मुखसे—
व्यथा-तप्त करुणार्द्र कहानी, दो विरही हृदयोंकी जगसे?

नीलांचलमें नील उदधिके नील तीरपर व्यथित विराजित ,
सुध-बुध सभी गौर सुन्दरकी, नील-धारमें बही अपरिमित ।
नीलकृष्णके एक चरणपर, सुख-दुख सब हो गया समर्पित ।
'कृष्ण', 'कृष्ण' के करुण रुदनसे दिशा-दिशा हो गयी निनादित ।।

रुदन कण्ठमें, रुदन रोममें, रुदन नयनकी हर हलचलमें ,
धधक उठी क्रन्दनकी ज्वाला गौर-हृदयके प्रति स्पन्दनमें ।
कृष्णान्वेषण दिनमें, निशिमें, जलमें, नभमें, जड़-चेतनमें ,
कृष्ण-विरहकी चिता जल गयी व्यथित गौरके अङ्ग-अङ्गमें ।।

एक बह चला सजा चिताको, नीलाचलकी नील-धारमें ;
एक गयी सम्पूर्ण डूब, अपने आँसूके गहन उदधिमें ।
गौर-हृदयकी नित विहारिणी, जली गौरके विरह-ज्वालमें ;
जल-जल बुझना, बुझ-बुझ जलना, शेष यही था उस जीवनमें ।।

कितने आँसू हुए प्रवाहित विष्णुप्रियाके तृषित नयनसे ?
कितनी भीगीं साड़ी उतरी गौर-विरहमें दग्ध वदनसे ।
कबसे हो रहा संगमन, सुरतरंगिणीकी धारासे—
सरस्वती-यमुनाका अविरल, निकल-निकलकर शून्य नयनसे ? ।।

कैसी चाह मिलनकी भीषण, जली प्रियाके हृदय-सदनमें ?
कैसा हाहाकार मचा था, तनमें मनमें, और नयनमें ?
'हा-हा' भीतर, 'हा-हा' बाहर, भीतर-बाहरके कण-कणमें ,
'हा-हा' का रव व्याप्त हो गया, जलमें, थलमें और गगनमें ।।

हाहाकार भरे घरमें था कहीं न कुछ भी स्वरका स्पन्दन ,
सूनी आँखें, सूना जीवन, सूना घरका सारा आँगन ।
नीरव प्राङ्गणमें बैठी थी, विष्णुप्रिया अति ही नीरव मन ,
नमित नयनकी व्यथित अश्रु-धाराने पूछा—'हे जीवन-धन' ।।

तुरन्त गौर सुन्दरकी मनहर गौर कान्तिसे नित संस्पर्शित–
नील लहरियोंसे ध्वनि आयी—'कहो प्रियतमे! क्या अभिवाञ्छित"?
स्वप्न-देशके वीणा-रव-सी, नीरव ध्वनि सुन हुई विकम्पित,
अश्रु-धारकी परमाकुलता मौन-मौन ही हुई निवेदित॥

"कब तक मुझको बहना होगा? क्या सत्य एक यह क्रन्दन है?
जलना-बुझना, बुझना-जलना, क्या यही एक बस जीवन है?
कब तक ये गीले नयन गले? क्यों दूर हृदयका चन्दन है?
क्या आशा करूँ न दर्शनकी? क्या दासी पूर्ण अभागिन है?"

नील लहरियोंकी नीरव ध्वनि हुई ध्वनित नीरव प्राङ्गणमें–
"हम तुम एक, सदा सङ्गी हैं दुसह विरहके भी प्रसङ्गमें।
विरह मिलनका पोषक, हम-तुम जलें और भी, प्राण-प्रियतमे,
क्रन्दन और हास्यसे ऊपर पुनः मिलन होगा निकुञ्जमें॥"

आशा छूटी, बिजली टूटी कलित वेलपर गौर मिलनके,
सम्बल छूटा, तारे टूटे पूर्ण तिमिरमय नीलाम्बरके।
धीरज छूटा, बन्धन टूटे भग्न हृदयके, नयन-कोषके,
टूट-टूटकर आँसू बिखरे, आँगनमें सम्पूर्ण विश्वके॥

डूब गया वसुधाका आँगन, डूब गया नभका नीलाञ्चल,
डूब गया नवद्वीप-पार्श्विनी सुरतरंगिणीका भी आँचल।
आँचलकी सारी सत्ता भी डूब गयी आँसूमें गल-गल,
बची समयके दो कपोलपर शुभ्र अश्रुकी धार अनर्गल॥

वही समय साक्षी है जगमें, शुभ्र अश्रुकी शुभ धाराका,
वही समय साक्षी है अब भी, नव निकुञ्जकी शुभ-शोभाका।
जहाँ छिटकता शुभ प्रकाश है, पीली-नीली ललित शिखाका,
जिसके शुभ्रालोक-पुञ्जमें, डूबा कण-कण है अग-जगका॥

[वसन्त पञ्चमी वि०सं० २०२० के अवसरपर गीतावाटिका, गोरखपुरमें पढ़ी गयी]

यादव महाराज उग्रसेन

मथुराके अधिदेवता तो सदासे श्रीहरि हैं। भगवान कपिल वाराह यहाँके देवता हैं। भूतेश्वर क्षेत्रपाल हैं। चण्डिका देवी नगर-रक्षिका हैं। ध्रुवकी इस तपस्थलीको माहिष्मती छोड़नेके पश्चात् यादवकुलने अपनी राजधानी बनाया।

माथुरमण्डलके अधिपति महाराज अन्धकके पश्चात् उनके पुत्र दुन्दुभि सिंहासनपर बैठे। उनके पुत्र अरिद्योत हुए और उनसे पुनर्वसु हुए। इन महाराज पुनर्वसुके पुत्र हुए महाराज आहुक। महाराज आहुकके दो पुत्र हुए—देवक और उग्रसेन। यदुवंशकी परम्पराके अनुसार छोटे पुत्र उग्रसेनजी मथुरा-नरेश हुए।

महाराज उग्रसेन तक चलती परम्पराको उनके ज्येष्ठ पुत्र कंसने भंग किया था। वह स्वयं पिताको बन्दी बनाकर सिंहासनासीन हुआ; किन्तु उस कलंकको भगवान वासुदेवने धो दिया। महाराज उग्रसेन ही यादवाधिप बने रहे अन्त तक।

कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कङ्क, शङ्कु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान ये नौ पुत्र महाराज उग्रसेनके हुए; किन्तु क्या लाभ ऐसे पुत्रोंसे। यादव-कुलकी मर्यादा चल पाती तो सबसे छोटे तुष्टिमानको सिंहासन प्राप्त होता; किन्तु भगवान वासुदेवने जब यदुकुल-कलंक कंसको सिंहासनसे नीचे फेंककर परमधाम पहुँचाया, उसके आठों भाई झपट पड़े थे शस्त्र उठाकर। फल जो होना था, वही हुआ। भगवान अनन्तने परिघ उठा लिया और कंसके साथ ही उन सबकी अन्त्येष्टि उसी दिन हो गयी। सिंहासनपर वृद्ध उग्रसेनजीको बैठाये बिना यदुकुलमें चली आती महाराज ययातिके शापकी मर्यादा बचायी नहीं जा सकती थी।

महाराज उग्रसेनके कंसा, कंसवती, कंका, शुरभू और राष्ट्रपालिका ये पाँच कन्यायें हुईं। महाराजने तथा उनके अग्रज देवकजीने निश्चय कर लिया था कि वे अपनी कन्यायें मथुरासे बाहर नहीं भेजेंगे। मथुरामें तो हमारा शूरसेनजीका ही कुल था, जहाँ महाराज कन्याका विवाह कर सकें। फलतः सबका विवाह उसी कुलमें हुआ।

महाराज उग्रसेन अत्यन्त सौम्य रहे। उनमें कोई महत्वाकांक्षा कभी नहीं दीखी और न उन्हें कभी रुष्ट होते देखा गया।

उनमें रोष या उग्रताका कोई चिह्न नहीं था। उन्होंने कभी किसी राज्यपर आक्रमणकी अनुमति नहीं दी। वे स्वभावसे ही उदार थे और दूसरे लोगोंकी सम्मति स्वीकार कर लेते थे। उनका अपने किसी मतमें कोई आग्रह नहीं था—जैसे उनका अपना कोई मत ही न हो। लेकिन वे धर्म, प्रजापालन तथा भगवद्भक्तिमें अत्यन्त दृढ़ थे। उन्होंने कंसका अनेक बार बहुत कड़ा विरोध किया था और अन्तमें तो कंसके असुरोंके विरुद्ध शस्त्र ही उठा लिया था उन्होंने।

भगवान वासुदेव अत्यधिक सम्मान करते थे महाराजका। किंतु महाराज ही थे कि उन्हें कभी भ्रम नहीं हुआ कि श्रीकृष्णचन्द्र सामान्य मनुष्य हैं। वे वासुदेवकी भगवत्ताके ठीक ज्ञाता थे और इसीलिये सदा वासुदेव जो कहें उसीका समर्थन करते थे।

अपनेको भगवत्करोंका यन्त्र बना देना, यह कहा बहुत जाता है, शास्त्रोंमें भी स्थान-स्थानपर है; किन्तु यह कितना कठिन है। महाराज उग्रसेनने इसे सहज बना लिया था। उनके भीतर अपने अहंकी ग्रन्थिका लेश भी कहीं नहीं रह गया था।

सर्वेश्वरेश्वर यों ही तो किसीका अनुगत नहीं बन जाता। भगवान वासुदेव महाराज उग्रसेनके सिंहासनके पार्श्वमें मृत्युके समान खड़े रहते थे और महाराजके समुचित सम्मानके प्रति सदा सावधान रहते थे।

इतना सम्मान कदाचित् ही पृथ्वीपर किसी मनुष्यको मिला होगा। सुधर्मा सभामें सिंहासनासीन महाराजके सम्मुख अनेक बार इन्द्र, कुबेरादि लोकपाल आये और छुद्र सेवकके समान उनके पादपीठका अपने मुकुटसे स्पर्श करके अपने उपहार वहाँ अर्पित करके पिछड़ते पदों हट गये। महाराजके सम्मुख मस्तक उठानेकी धृष्टता देवराज भी नहीं करते थे। लेकिन महाराजमें गर्वकी छाया तक नहीं दीखी कभी। वे जैसे मूर्ति बन गये थे—आराध्यमूर्ति और उनका अन्तर सदा सजग रहता था—'यह भगवान वासुदेव हैं कि तुम्हें इस आराध्यपीठपर बैठाये हैं। यह वासुदेवकी महिमा उनका प्रभाव—उनकी कृपा है।'

———

युवराज कंस

महाराज उग्रसेन इतने सात्विक, शान्त, भगवद्भक्त, परदुःखकातर और उनके ज्येष्ठ पुत्र ऐसे क्रूर, अभिमानी तथा असुर-मित्र हो गये—आश्चर्य ही है। देवर्षि नारदने वतल या था कि देवासुर-संग्राममें भगवान नारायणके चक्रसे मारा गया महासुर कालनेमि ही कंसके रूपमें धरापर आया, अतः कंसके शील-स्वभावमें जो आसुरता थी, वह समझमें आती है; किंतु ऐसे असुर ऐसे सात्विक पुरुषको पिता वनानेका अवसर कैसे पा जाते हैं?

कंस उग्रसेनजीका केवल क्षेत्रज पुत्र था। महारानीके प्रमादसे उनके उदरमें आनेका अवसर मिल गया असुरको। देवर्षि नारदने यह कथा कंसको भी सुना दी थी।

देवासुर-संग्राममें जव श्रीहरिके चक्रने कालनेमिका सिर धड़से पृथक्र कर दिया, शुक्राचार्यजीने सायंकाल फिर उस सिरको धड़में सटाया और अपनो संजीवनी विद्यासे जीवित कर दिया। जीवित होकर वह मन्दिराचलपर चला गया और केवल दूर्वाका रस पीकर दीर्घकाल तक तप करता रहा। जब सुप्रसन्न सृष्टिकर्त्ताने उसके सामने प्रगट होकर वरदान मांगनेको कहा तो उसने माँगा—'कोई सुर-असुर मुझे मार न सके।'

इस वरदानको पाकर कालनेमि पृथ्वीपर आनेका अवसर देख रहा था। अवसर पाकर कंसके रूपमें उसने जन्म-ग्रहण किया।

देवर्षि नारदने बतलाया था—"जिस सौत्र विमानको तथा उसके स्वामी शाल्वको श्रीकृष्णने नष्ट किया, वह विमान भगवान शंकरके आदेशसे दानवेन्द्र मयने द्रमिलसे लेकर शाल्वको दिया था। दानवेन्द्रने इस विमानको पहिले वनाया था और द्रुमिलकी सेवासे प्रसन्न होकर उसे दे दिया था।"

महाराज उग्रसेनके विवाहको थोड़े ही दिन हुए थे। महारानी युवती थी। उन्होंने उत्साहमें महाराजसे अनुमति ली और सखियोंके साथ सुयामुन (कलिन्द) पर्वत पर घूमने चली गयीं। गिरि, वन एवं निर्झरोंसे उन्हें सहज प्रीति थी। महारानीने नयी अवस्थाके उत्साहमें यह ध्यान नहीं दिया कि पतिसे पृथक्र होनेपर प्रोषित-पतिका नारीको संयम, सादगी और मर्यादा-

पूर्वक रहना चाहिये। उन्होंने भलीप्रकार श्रृंगार किया था। पर्वतपर किन्नर युगलोंके उत्तेजक गायनको सुनकर वे स्वयं श्रृंगार रसमें मग्न हो गयीं। सखियोंके साथ गाती हुई वे पर्वतपर पुष्पित लता-कुञ्जोंमें घूमने लगीं।

उसी समय द्रुमिल अपने सौभ विमानमें चढ़ा पर्वतके ऊपरसे निकला। उसने सहज ही विमान नीचे उतारा और विमानचालकको साथ लेकर पर्वतपर घूमने चल पड़ा। दूरसे उसकी दृष्टि सम्पूर्ण श्रृंगार किये महारानी पर पड़ी। वे अतिशय सुन्दरी तो थीं ही। दानव द्रुमिल वैसे भी कामुक था। उसका मन क्षुब्ध हो गया।

'यह सुन्दरी कौन है ?' दानवने स्वतः कहा। उसका सेवक मौन रहा। महारानीके भालका सिन्दूर स्पष्ट था और दानव जानता था कि आर्यनारीके साथ बलात्कार सम्भव नहीं है। वह शाप देकर प्राणोत्सर्ग कर देगी।

'यह तो यादव नरेश उग्रसेनकी महारानी है।' ध्यान करके दानवने यह जान लिया। महारानी पतिसे दूर हैं और इस समय उनका मन श्रृंगारोत्तेजित है, यह भी उसने जान लिया। साथीको वहीं छोड़कर महाराजका रूप मायासे धारण करके महारानीकी ओर चल पड़ा।

'महाराज आप !' महारानीने मुस्कराते हुए महाराजको अपनी ओर आते देखा तो चौंकी भी और प्रसन्न भी हुईं।

'मैं तुम्हारा वियोग नहीं सह सका।' कहते हुए द्रुमिलने भुजाओंमें महारानीको भर लिया। सखियाँ स्वयं दूर चली गयीं वहाँसे।

महारानी पहिलेसे ही उत्तेजित थी। उनके नेत्र बन्द हो गये। पतिका प्रतिवाद करनेका प्रश्न ही नहीं था; किंतु उत्तेजना शान्त होते ही वे सावधान हो गयीं। असुरके अंगकी दीर्घताने उन्हें चौंका दिया। वे क्रोधसे काँपती हुई बोलीं: 'सच सच बता, तू कौन है ? तूने छल करके मेरा सतीत्व नष्ट करनेका साहस कैसे किया ? मैं तुझे अभी शाप देकर भस्म कर दूँगी।'

'तू मुझे शाप नहीं दे सकती।' द्रुमिल अपनी दानव प्रकृतिपर उतर आया—'शाप केवल सती दे सकती है। पतिसे दूर इतना श्रृंगार करके तू उन्मत्त क्रीड़ा कर रही है, यह सतीत्व है ? तू यहाँ एकान्त पर्वतपर कामोत्तेजक वेश बनाये, श्रृंगारके गीत गाती, हंसती-अठखेलियाँ करती दर्शकके मन-नेत्रको बलात् आकर्षित कर रही है और कहती है कि दोष मेरा है ?'

'तूने मुझे 'कस्त्वं' कहा है, अतः तेरे इस समयके स्थापित गर्भसे जो पुत्र होगा, उसका नाम कंस होगा।' दानवने कहा—'वह अतिशय प्रतापी होगा, इसीसे सन्तुष्ट हो जा। अन्यथा इस घटनाको प्रकट करते तू प्रताड़िता-अपमानिता ही होगी।'

दानव वहाँसे तत्काल चला गया। महारानी बहुत दुःखी, दीन हो गयी। कठिनाईसे उन्होंने अपने अश्रु पोंछे। सखियोंने समझा कि महाराजके अकस्मात चले जानेसे महारानी दुःखी हो गयी हैं। वे उसी समय मथुरा लौट आयीं।

कंसका जन्म मृगशिरा नक्षत्रमें हुआ था। उसका कर्म नक्षत्र चित्रा था। वह बचपनसे उग्र प्रकृतिका था और बलवान क्रूर प्रकृति लोग उसे प्रिय थे। ऐसे लोगोंको अनुशासनमें रखना उसे बहुत अच्छा आता था।

शीघ्र ही मथुराके मल्लोंने अल्पायु राजकुमारकी शक्तिके सम्मुख मस्तक झुका दिया। मल्लयुद्ध और गदायुद्ध कंसको प्रिय थे और इनमें उसे अतिशय निपुणता प्राप्त थी। उसके नेत्र बड़े-बड़े और लाल-लाल थे। शरीर वज्रके समान कठोर, रस्सीके समान कसा सुदृढ़ था। विशाल शरीर और महाराज उग्रसेनसे सर्वथा भिन्न कज्जल कृष्णवर्ण था कंसका। उसका नामकरण भी माताने ही किया था।

महाराजा उग्रसेनने अपने ज्येष्ठ पुत्रको सेनापति बनाया उसकी युद्धप्रिय प्रकृतिको देखकर। ज्येष्ठपुत्रको युवराज बनानेकी बात यदुकुलकी परम्परामें ही नहीं थी। महाराजने तो राज्याधिकारी समझकर ही छोटे पुत्रका नाम तुष्टिमान रखा था। वे चाहते थे कि प्रजाको वह सन्तुष्टि देता रहे। लेकिन कंसने सेनापर शीघ्र अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। सेनामें उसने अपने शील-स्वभावके शूर भरने आरम्भ कर दिये जो उसीके अनुगत थे। वे उसे युवराज कहने लगे। उनके प्राधान्यके कारण पूरी सेना ही उसे युवराज कहने लगी।

कंसको अधिकार देना नहीं पड़ा। आज्ञा देना—शासन उसकी सहज प्रकृति थी। उसने प्रशासनके सभी विभागोंपर स्वतः प्रभुत्व स्थापित कर लिया। किसीने प्रतिवाद नहीं किया; क्योंकि महाराज तो सहज ही इस भारके हटनेसे अपनेको निश्चिन्त अनुभव करने लगे और स्वजनोंके प्रति कंसके मनमें इतनी प्रीति थी, वह उनकी प्रसन्नता, सुख-सुविधा, रुचि-सम्मानका इतना ध्यान रखता था कि आश्चर्य होता है। सभी उसे हृदयसे चाहते थे। उसके छोटे भाई तो उसपर प्राण देनेको सदा प्रस्तुत रहते थे।

इसमें आश्चर्यकी बात नहीं है । आसुर प्रकृतिमें केवल क्रोध ही प्रधान नहीं होता । मोह-ममताका भी पूरा प्रावल्य होता है । अतः जब तक कोई स्वजन अपने अहंकार-स्वार्थके लिये ही आशंकाका कारण न बन जाय, असुर स्वजनोंसे अतिशय स्नेह करते हैं; किन्तु उनके स्वार्थके लिये आशंका हो तो अत्यन्त आत्मीयका निर्मम उच्छेद करनेमें भी वे हिचकते नहीं । कंसका आसुर स्वभाव इस तथ्यके सर्वथा अनुकूल था ।

कंसकी तनिक भी रुचि प्रजा-पालनमें नहीं थी । प्रजाकी सुख-समृद्धि-के लिये यत्नका प्रश्न आनेपर वह कह देता था—"सदा महाराज इसके लिये सचिन्त एवं सयत्न रहते हैं, अतः मेरे उधर ध्यान देनेकी आवश्यकता ही क्या है ?"

कंसकी रुचि प्रजासे कर प्राप्त करनेमें थी । कर देनेमें प्रमाद तो कोई करता नहीं था ; किन्तु विलम्ब भी उसे सह्य नहीं था । वैसे जो स्वजन थे, उनके लिये कर देना कभी यादव-नरेशने अनिवार्य नहीं माना था । कर देना उनके लिये केवल महाराजके प्रति सम्मानसूचक था और इसके लिये समय-का बन्धन नहीं था । कंसने भी कभी इसे अनिवार्य वार्षिक-कर नहीं बनाया । यहाँ तक कि जब कंस स्वयं सिंहासनपर बैठ गया, ब्रजपति केवल एक बार उसे कर देने पधारे । वह भी इसलिये कि उन्हें पुत्र-प्राप्ति हुई थी । इस अवसरपर सम्राट्का सम्मान किया जाना आवश्यक माना उन्होंने । फिर वे मथुरा कर देने नहीं आये, न कर भेजा । कंसने भी इसमें कभी सिंहासनकी अवज्ञा नहीं मानी ।

स्वभावसे कंस क्रोधी था । लगता था कि वह क्रोधमें भरा ही रहता है । उसकी वाणी रुक्ष, कठोर और स्वर उच्च था । जैसे वह धीरे बोल ही नहीं सकता हो । मद्य-माँस उसे बहुत प्रिय थे । फलतः समान रुचिवाले लोग उसके परिकर बन गये थे । उसने जब सेना सजायी और दिग्विजय करने निकला, महाराजने मना किया था । 'क्षत्रियको महत्त्वाकांक्षी तो होना ही चाहिए ।' यादव कुलके शूरोंने, प्रधान राजसभासभ्योंने, यादव वृद्धोंने भी कंसका पक्ष लिया उस समय । महाराजको मौन रह जाना पड़ा था ।

'मैं आपकी सेनाको समृद्ध करके लौटा लाऊँगा ।' कंसने गर्व-पूर्वक कहा था—'मुझे अधिकांश स्थानोंपर द्वन्द्व-युद्ध ही करना है । अतः आप निश्चिन्त रहें ।'

सचमुच कंसने प्राय: मल्लयुद्ध ही किये। मथुराकी विजय-वाहिनीको प्राय: तटस्थ दर्शक रहना पड़ा । युवराजकी विजयके समाचार मथुरामें आये दिन आने लगे और विजय किसे अप्रिय लगती है ? मथुराके नागरिक भी सोल्लास महोत्सव मनाते रहे।

कंस किसीको शूर सुनता था तो वहीं जा धमकता था और मल्लयुद्ध-की चुनौती देकर कह देता था—'जो पराजित होगा, उसे विजयीका सेवक होकर रहना पड़ेगा।'

वीराभिमानियोंने कंसकी चुनौती सहर्ष स्वीकार की; किन्तु परिणाम यह हुआ कि उनकी संख्या कंसके सेवकोंमें बढ़ती गयी। यह दूसरी बात है कि ऐसे लोगोंको कंसने सखाके समान ही स्नेह, सम्मान और सुविधा सदा दी।

माहिष्मती पुरो कंस पहले गया था । वहाँके नरेशके लोक-प्रसिद्ध मल्लयुद्ध निपुण पाँचों पुत्र चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल क्रमशः भिड़े और पराजित होकर कंसके परिकर बन गये । केशी, अरिष्ट भी ऐसे ही उससे हारे। घोटक बने केशीको पछाड़कर उसने उसपर सवारी करली थी और देवताओंको भी आतंकित रखने वाले अरिष्टासुरको जो प्राय: वृषभ बना रहता था, साँकलमें बाँधकर मथुरा ले आया था।

मित्र बनाया उसने केवल द्विविदको । यद्यपि प्रवर्षण गिरिपर बीस दिन अविराम युद्ध करके द्विविदको कंसने थका दिया था । महेन्द्रगिरि पहुँचकर पर्वत ही उखाड़ने लगा तो भगवान् परशुराम क्रुद्ध हो गये; किन्तु कंस उनके चरणोंमें दण्डवत् गिर पड़ा था। इतनेपर भी परशुरामने अपना धनुष आगे धर दिया—'तू इसे चढ़ा सके तो ठीक, अन्यथा मैं अभी तुझे परशुकी भेंट चढ़ा दूँगा।'

धनुष देकर बलकी परीक्षा करना परशुरामजीका पुराना स्वभाव है। त्रेतामें भी श्रीरामको उन्होंने वैष्णव धनुष चढ़ानेको कहा था। उनका अपना धनुष भी भगवान् विष्णु द्वारा निर्मित है । श्रीहरिने त्रिपुर ध्वंशके लिये वह भगवान् नीलकंठको दिया था। शंकरजीने प्रसन्न होकर भूभार दूर करनेके लिये वह धनुष और परशु परशुरामको दे दिया।

कंसने उस लक्ष भारके धनुषको चढ़ा दिया । यद्यपि वह पूरी शक्ति लगानेके कारण स्वेदसे लथपथ हो गया। स्वयं कंसने मथुरा लौटकर कहा था—'मैं धनुष चढ़ाकर लगभग मूर्छित हो गया था।'

'मैं आपका सेवक हूँ।' धनुष भगवान् परशुरामके चरणोंके समीप रखकर कंस बोला था दण्डवत गिरकर—'मेरी रक्षा करें।'

"यह धनुष तू ही रख। इस शाम्भव अस्त्रकी पूजा करना।" परशुरामने कहा—"जो इसे तोड़ देगा, वह परिपूर्णतम परमात्मा है, यह समझ लेना। उससे विरोध करेगा तो निश्चय ही मारा जायगा।"

कंस वह धनुष मथुरा ले आया था। जिस दिन श्रीकृष्णचन्द्रने उसे तोड़ दिया, कंसकी चिन्ताका पार नहीं था उस दिन। समुद्र तटपर रहने वाला सर्पाकार अघासुर यहाँ पहुँचनेपर कंसको निगलने ही लगा था; किन्तु कंसने उसे पटक कर ऐसा रोंदा कि गलेमें लपेटनेपर भी अघ शिथिल ही बना रहा। वह भी अनुचर बनकर आ गया।

अधिकांश नरेशोंने बिना युद्ध किये मथुराका आधिपत्य स्वीकार करके युवराजको कर दे दिया। नरकासुरके यहाँ प्राग्ज्योतिषपुरमें प्रलम्ब, धेनुक, तृणावर्त, बकासुर जब कंससे हार गये तो बकासुरकी बहिन पूतना युद्ध करने आ गयी। कंसने उससे कहा—"यह बक मेरा भाई हुआ। तुम मेरी बहिन बनकर मथुरामें रहो।"

स्त्रीसे युद्ध करके विजयी होनेमें कोई यश नहीं और पराजित होनेमें अत्यन्त अपयश है। यह बात कंस समझता ही था। उसने नीतिकुशलतासे पूतनाको मना लिया। लेकिन भौमासुरने युद्ध नहीं किया। उसने हँसकर कंसको हृदयसे लगाया और कह दिया—"हम दोनों परस्पर मित्र रहें। परस्पर युद्धकी बात क्यों की जाय।" कंसने उसकी नीति-कुशलताको स्वीकार कर लिया।

इसी प्रकार शम्बरासुरने भी कंससे मैत्री कर ली बिना युद्ध किये। व्योमासुरने युद्ध किया त्रिकूटपर और हारकर सेवक बन गया। सबसे भिन्न कार्य किया बाणासुरने। कंसने उसके यहाँ जाकर युद्धके लिये ललकारा तो उस सहस्रबाहुने कहा—"मैं किसी अल्पप्राणसे युद्ध नहीं करता। इससे मुझे व्यथा होती है। तुम पहिले मेरा पैर उठा दो।"

बाणने भूमिपर पैर पटका। उसका चरण घुटने तक भूमिमें धंस गया। कंसने चरण उठा तो दिया, किन्तु इतना श्रम पड़ा कि क्लान्त हो गया। वह विजयके सम्बन्धमें सशंक हो ही गया था, भगवान शिवने रोक दिया आकर—'तुम परस्पर युद्ध मत करो। मित्र बनकर रहो।' कंसने सहर्ष इसे स्वीकार कर लिया।

पश्चिम दिशामें वत्सासुरको कंसने पछाड़कर सेवक बनाया ; किन्तु कालयवनसे मित्रता करली। यह कंसने बुद्धिमानीकी ; क्योंकि उसे पता था कि कालयवनको युद्धमें अपराजित रहनेका वरदान प्राप्त है । कंसने इसके पश्चात् अमरावतीपर आक्रमण कर दिया। यह समाचार मथुरा आया तो महाराज बहुत रुष्ट हुए । उन्होंने कंसको तत्काल मथुरा लौटनेका आदेश भेजा।

आदेश पहुँचनेमें देर हुई। कंस आदेश पाकर लौट आया । अन्यथा वह अन्य लोकपालोंकी पुरियोंपर चढ़ाई करता । उसकी योजना तो असुर-नाग लोकोंको जीतकर त्रिभुवन-विजय करनेकी थी ; किन्तु अमरावतीको वह आदेश मिलनेसे पूर्व ही पराजित कर चुका था। देवताओंसे उसने युद्ध किया और जब उसके मुद्गरके आघातसे देवराजके हाथसे वज्र गिर पड़ा, देवताओंमें बहुत-से भाग गये। शेषने पराजय स्वीकार करली। कंस वहाँसे देवराजका छत्रयुक्त सिंहासन लेकर मथुरा लौट आया।

पृथ्वीपर दिग्विजय करने मगधराज जरासन्ध निकले थे । धरापर मल्लयुद्ध और गदायुद्धमें उनकी कोई तुलना नहीं थी। कंसकी दिग्विजयका समाचार पाकर सीधे मथुरा आये और यमुना तटपर उन्होंने सैनिक-शिविर डाला। उनके पास साठ सहस्त्र गजबल रखनेवाला महागज कुवलयापीड़ था। वह महागज अपनी शृङ्खला तोड़कर सैनिक शिविरसे भागा। कुशल यह हुई वह नगरमें नहीं गया। नगरके बाहर मल्लशालामें पहुँच गया। उस समय युवराज कंस वहाँ दैनिक व्यायाम एवं मल्लयुद्ध करने पहुँचे थे। उस पर्वताकार मत्तगजको देखकर दूसरे मल्ल भाग खड़े हुए ; किन्तु कंसने गजकी सूँड़ पकड़ ली और उसे घसीटता हुआ सीधे जरासन्धके सैनिक शिविरमें मगधराजके सामने ले गया।

"आप अपने इस गजको ठीक बाँध रखें ।" कंसने उच्च स्वरमें चेतावनी दी—"यह नगर तक पहुँच गया था। अब यदि यह फिर उधर आया तो सम्भव है आप तक लौट न सके।"

'तात ! तुम इसे मेरा उपहार मानकर स्वीकार कर लो।' जरासन्धने सहर्ष उठकर कंसको हृदयसे लगा लिया और बहुत सत्कार करके, उसी गजपर बैठाकर शिविरसे विदा किया। उसी दिन मगधराजके कुल पुरोहित महाराज उग्रसेनके सम्मुख नारियल लेकर पहुँचे और उन्होंने प्रार्थनाकी—"मगधराज अपनी दोनों पुत्रियोंके विवाहके सम्बन्धमें बहुत चिन्तित थे। अल्पप्राण पुरुषको अपना जामाता बनाकर वे लज्जित नहीं होना चाहते

थे। मगधसे वे उपयुक्त पात्रके अन्वेषणार्थ ही निकले थे। सौभाग्यसे हम मथुरा आ पहुँचे। आपके ज्येष्ठ कुमारके बाहुबलको हमने प्रत्यक्ष देख लिया। मगधराजने प्रार्थना किया है कि यह नारियल स्वीकार करके इस सम्बन्धको स्वीकृति देनेका अनुग्रह करें।"

युवराज कंस राजसभामें ही थे। नगरमें यह बात फैल चुकी थी कि मगधराजके महागजको उन्होंने सूँड़ पकड़कर घसीट कर सैन्य-शिविर तक पहुँचाया और उसे मगधराजके उपहारके रूपमें लाकर मथुराकी गजशाला-में बाँध दिया है। महाराजने ज्येष्ठ पुत्रकी ओर देखा। कंसने संकोचसे सिर झुका लिया। महाराजने महर्षि गर्गको बुलवाया और उसी समय उस सम्बन्धको सविधि स्वीकृति दे दी।

मगधराजने मथुरामें ही अपनी दोनों कन्यायें अस्ति और प्राप्तिका परिणय कंसके साथ कर दिया। मथुरा-नरेशको गिरिव्रज तक बारात ले जानेका कष्ट भी नहीं करना पड़ा। दहेजमें मगधराजने इतने गज दिये कि मथुराकी गजसैना, जो नगण्य प्राय थी, भारतकी प्रमुख गजसेनाओंमें गणना करने योग्य हो गयी।

युवराज कंसके आग्रहसे ही उनकी बहिनों—चचेरी बहिनोंका भी विवाह वसुदेवजीके ही कुलमें हुआ।

—x—

वसुदेव 'आनकदुन्दुभि'

वृष्णिवंशमें देवमीढजीके पुत्र हुए शूरसेनजी । उनकी पत्नी मारिषाने दस पुत्ररत्न प्राप्त किये—महाभाग वसुदेवजी, देवभाग, देवश्रवस, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कंक, शमीक, वत्सक और वृक । पाँच पुत्रियाँ हुईं देवी मारिषाके—पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतिकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी ।

शूरजीने अपने सन्तानहीन मित्र महाराज कुन्तको अपनी ज्येष्ठ पुत्री पृथा दत्तक दे दी थी और इसीसे उनका नाम कुन्ती हो गया । महाराज पाण्डुने उनका पाणिग्रहण किया । श्रुतदेवाजीका विवाह करूषाधिप वृद्ध-शर्मासे हुआ, उनका पुत्र दन्तवक्र था । केकयनरेश धृष्टकेतुने श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण किया, उनके सन्तर्दनादि पाँच पुत्र हुए और उनकी कन्या भद्राजी तो भगवान वासुदेवकी पट्टमहिषी ही हुई । चेदिराज दमघोषके साथ परिणय हुआ श्रुतश्रवाका, उनका पुत्र था शिशुपाल । अवन्तीनरेश जयसेनसे विवाह हुआ राजाधिदेवीका, उनके पुत्र हुए विन्द और अनुविन्द तथा श्रीकृष्णचन्द्रने जिन्हें महारानी बनाया, वे मित्र विन्दाजी पुत्री थीं उनकी ।

उद्धवकी माता कंसा उग्रसेनजीकी ज्येष्ठ पुत्री थी । उनके दो पुत्र हुए—बृहद्बल (उद्धव) और उनके ज्येष्ठ भ्राता चित्रकेतु । ग्रन्थोंमें है कि जिसके मस्तकपर बिना छत्र लगाये ही छत्रके समान सदा कमलाकार छाया बनी रहे उसे चक्रवर्ती कहा जाता है ।[1] ऐसी छाया सदा श्रीवसुदेव-जीके मस्तक पर देखी गयी । महाराज उग्रसेनके मस्तकपर यह छाया स्वाभाविक थी ; किन्तु……?

ऐसी छाया द्वारिकामें प्रद्युम्न और अनिरुद्धके मस्तकपर भी देखी जाती थी । भगवान बलराम और वसुदेवके मस्तकपर दीखी इसमें तो आश्चर्य ही क्या । त्रिभुवनके स्वामीने जिन्हें पिताका गौरव दिया, वे भूमिके चक्रवर्ती नरेशका पद स्वीकार करें या न करें तो सहज निखिल भुवनवन्द्य हैं । उनका आदेश स्वीकार करना सौभाग्य है त्रिभुवनाधीशके लिये भी । यह छाया तो केवल यह सूचित करती है कि चक्रवर्तीका ऐश्वर्य प्रभुत्व, गौरव उस व्यक्तिमें है ।

---

१. यस्य मूर्धनि दृश्येत विना छत्रेण भूपतेः ।
पद्मानुकारिणी छाया तमाहुः चक्रवर्तिनम् ॥

वसुदेवजीके सभी भाई उनका ऐसा सम्मान करते थे कि अग्रजका वैसा सम्मान पाण्डवोंमें ही देखा गया था। वे भी अपने सब अनुजोंको अतिशय स्नेह करते थे। उनका भवन ही नहीं, उनका अपना कक्ष भी उनके अनुजोंका जैसे अपना ही गृह रहा। उनके अनुजोंके सभी बालकोंने कभी अनुभव नहीं किया वे हमारे अपने पिता नहीं हैं।

कंसने उन्हें बहुत सताया था, उनको कितनी मनोव्यथा निरन्तर वर्षों तक झेलनी पड़ी—कोई कल्पना है! किन्तु उनका श्रीमुख सदा शान्त-गम्भीर दीखता था। कोई क्लेश—कोई व्यथा उन्हें स्पर्श नहीं कर सकी थी। अवश्य इसका एक सुपरिणाम हुआ था कि वे और माता देवकी भी अत्यन्त करुणाकातर हो गये थे। दोनोंको किसीके भी दुःखी होनेकी कल्पना असह्य थी।

पितामह शूरसेनजीने बहुत बड़ी आयु पायी। वे अन्ततक स्वस्थ, सशक्त बने रहे। वैसे उनके लिये यह अच्छा नहीं हुआ। उन परमश्रद्धेयको अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और उनकी भी सन्तानोंका महासंहार स्वयं देखना पड़ा।

श्रीशूरसेनजीका भवन क्या गृहस्थका भवन था। वह तो देवमन्दिर था और उसमें वे साक्षात् देव विराजमान रहते थे। प्रलम्बकाय, प्रशस्त-भाल, नित्य कृपापूरित दीर्घ लोचन, आजानु विशाल बाहु, विशाल वक्ष, उज्वल केश-श्मश्रु। शरीरमें वली पड़ी थी सर्वत्र; किन्तु वार्धक्यमें भी सम्पूर्ण तारुण्यकी शक्ति थी उनमें।

सब बालक ही नहीं, महाराज उग्रसेन तक नियम पूर्वक प्रतिदिन उनके चरणोंमें प्रणाम करने उनके भवनमें पहुँचते थे। वे कदाचित् ही कुछ बोलते थे। केवल सुप्रसन्न दृष्टिसे देख लेते थे। एकमात्र भगवान वासुदेवके पहुँचनेपर कहते थे—'तुम आये।'

'कोई सेवा तात?' प्राय भगवान वासुदेव पूछते थे चरण-वन्दना करके।

'अच्छा!' उनके नेत्रोंसे अश्रु झरने लगते थे और उनका दक्षिण कर श्रीकृष्णकी अलकोंपर घूमता था।

वे तपोवन नहीं गये; किन्तु भवनको तपोवन बना रखा था उन्होंने। उनके कक्षमें कोई उपकरण नहीं रहता था। एक दर्भासन अवश्य था शयनके लिये; पर पता नहीं, वे शयन कब करते थे। उन्होंने स्वयं

प्रांगणमें तुलसी तथा थोड़े पुष्प लगा रखे थे । सेवकोंकी बात तो दूर—बालकोंमें भी किसीको वहाँ कोई सेवा करने वे नहीं देते थे। स्वयं उन वीरुधोंकी सेवा करने या आराधनामें लगे रहते थे। केवल माता रोहिणी थीं कि वे हठपूर्वक स्वयं उनका भवन नित्य स्वच्छ कर आती थीं और वे भी अतिशय वात्सल्यवश उन्हें रोक नहीं पाते थे।

आराधना—केवल आराधना ही उनका जीवन बन गयी थी। नगरमें, राजभवनमें क्या हो रहा है, उन्हें कुछ पता नहीं रहता था। कंस जब तक जीवित रहा, उसे भी साहस नहीं हुआ कि उनको कभी राजसभामें बुलावे या उनके गृहमें जाय । उनके एकान्त जीवनमें उसे बाधा देनेका न प्रयोजन आया, न उसे स्मरण हुआ कंसके न रहनेपर भी वे प्रायः ऐसे ही रहे, जैसे नगरमें हों ही नहीं।

उनके ज्येठ पुत्रने अपने ऋषिकल्प पिताका सम्पूर्ण शील-स्वभाव पाया था।

निखिल ब्रह्माण्डनायकको भी जिन्हें पिता बनानेका लोभ लगा, उनकी गुण-गरिमाका कोई भी कैसे अनुमान कर सकता है।

अठारह पत्नियाँ थीं उनके और वे सब सबके लिये अपनी ही माता थीं।

महाराज उग्रसेनके अग्रज देवकजीके सात कन्यायें थीं—धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी। इन सातोंका विवाह तो देवकजीने क्रमशः वसुदेवजीसे किया ही था, पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला, इन्दिरा, वैशाखी, सुनाम्नी, वृकदेवी और सुतनु और थीं। इनमें-से रोहिणी, इन्दिरा, वैशाखी, भद्रा और सुनाम्ना ये पाँच तो पौरववंशीया ही हैं । शेष छः विभिन्न राजकुलोंसे आयी थीं। इनकी सन्तानोंके साथ वसुदेवजीके अनुजोंकी सन्तानोंका एक बहुत बड़ा समुदाय था। सब मातायें समान थीं और उस भवनमें देवरानियाँ अपनी जेठानियोंकी सगी बहिनें ही रहीं । सभी माताओंने सबके बच्चोंको स्वगर्भजातका वात्सल्य ही सदा दिया।

अन्तःपुर बालकोंसे भरा रहता था ; किन्तु माता देवकी अपने स्वामीके समीप ही प्रायः रहती थीं । वे सबसे छोटी थीं—उनके हृदयसे यह व्यथा कभी नहीं गयी कि उनके कारण उनके स्वामीको बन्दी-जीवन दीर्घकाल तक व्यतीत करना पड़ा। उनसे किसी उनकी सपत्नीने कभी

स्पर्धा नहीं की । सब उनको अनुजाका स्नेह देती रहती थीं ; किन्तु ये दिव्य दम्पत्ति तो जैसे धरापर आराधना करने ही आये थे।

भगवान वासुदेवके पिताका सदन—उनका निजी कक्ष भी सदा असज्जप्राय ही रहा। पितामहके समान ही यह गृह भी मन्दिर ही था और इसमें भी जाते समय सबमें श्रद्धा-विनम्रता स्वतः आ जाया करती थी।

आराधनाके अतिरिक्त महाभागवत वसुदेवजीको जैसे कोई कार्य नहीं रह गया था । उनको नगरसे, प्रशासनसे और परिवारसे भी सम्यक् श्रद्धा मिली थी ; किन्तु वे प्रायः अन्तर्मुख रहते थे । कहीं कोई वाह्य परिस्थिति उन्हें विचलित नहीं करती थी। इस सदनमें भी दास-दासियोंका प्रवेश नहीं था । देवकी माताने तो द्वारिकामें भी इस सदनकी कोई सेवा अपनी किसी पुत्रवधूको नहीं करने दी । वे स्वयं ही गृहमार्जनसे लेकर समस्त मेवा यहाँ करती थीं।

राजसदनके भीतर भी तपोवन हो सकते हैं और उनमें भी भगवत्प्राण तापस रहते हैं, यह केवल वे समझ सकते हैं, जिन्होंने मथुरा या द्वारिकामें पितामह शूरसेनजीका या वसुदेवजीका निजसदन देखा है।

दोनों सदनोंमें केवल एक अन्तर था। इस सदनमें प्रायः पद-वन्दनके लिये जब अग्रजके साथ भगवान वासुदेव पहुँचते थे, माता-पिता दोनों ही भाव-विह्वल हो जाते थे। दोनों क्रमशः दोनों पुत्रोंको अङ्कमें बैठा लेते थे । उनके अश्रु-प्रवाहसे गौर-श्यामकी अलकें आर्द्र हो जाती थीं। पुलकपूरित शरीर, वात्सल्य रुद्ध कण्ठ—स्नेहके उस निर्बन्ध प्रवाहका वर्णन नहीं सम्भव है पितृव्य।

राम-श्याम उनके अंकमें पहुँचकर सदा शिशु बन जाते थे । वे अनन्तानन्त लोकमहेश्वर वहाँ जैसे कुछ जानते नहीं।

—××—

माता देवकी

एक साथ इतना सौभाग्य और इतना क्लेश कैसे मिलता है जीवको ? महाभाग वसुदेवजी और माता देवकीके सौभाग्य तथा क्लेशकी भी सीमा सोचना कठिन है ?

महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायनने लिखा है—प्रजापति महर्षि कश्यपको यज्ञ करना था, वरुणदेवसे वे उन गौओंको माँग लाये जो समुद्र-मन्थनसे निकली सुरभिकी सन्तान थीं।

वे कामधेनु गौएँ थीं। उनको पाकर महर्षि कश्यपके यज्ञमें किसी सामग्रीका अभाव रह नहीं सकता था। यज्ञ सांग सम्पन्न हो गया, किन्तु देवमाता अदिति और सुरभिके मनमें लोभ आ गया। सुरभिने कहा – 'ये मेरी सन्तान हैं, मेरे पास रहें।'

देवमाताका कहना था—'सचराचर महर्षिकी प्रजा है। सब आते हैं अपने पिताके आश्रममें। सुर-असुर, नागादि सब आते हैं और मुझे अपनी तथा अपनी सपत्नियोंकी सन्तानोंका सत्कार करना पड़ता है। इन गायोंकी मुझे आवश्यकता है। वरुण इनका क्या करेंगे ?

देवमाता अदितिका दिति, दनु आदि सब समर्थन करने लगी थीं। सब चाहती थीं, गाएँ कश्यपाश्रममें ही रहें। सब पत्नियोंका आग्रह महर्षि कश्यपको स्वीकार करना पड़ा। उन्होंने माँगनेपर भी वरुणको गायें नहीं लौटायीं।

जलाधीश वरुण सुर-असुर सबके पिता महर्षि कश्यपके साथ कोई धृष्टता करते तो सभी उनके शत्रु हो जाते। विवश होकर वे लोकसृष्टा ब्रह्माजीके पास गये "महर्षि मेरी गाएँ नहीं दे रहे हैं। ये गाएँ अपने तेजसे ही रक्षित रहनेवाली, कामधेनु हैं और समुद्रोंमें विचरण करती हैं। आपने और सभी देवताओंने इन्हें मुझे प्रदान किया था। इनके अभावमें तो मैं कंगाल हो गया हूँ। आप इन्हें दिला दें या फिर और किसीको जलाधिप बनावें।"

ब्रह्माजीको अपने पौत्रपर क्रोध आ गया—'महर्षि और प्रजापति होकर कश्यप अन्याय करता है ?' उन्होंने शाप दे दिया—'कश्यपको

साधारण मनुष्यके समान लोभ आया है, अतः वह अपनी पत्नी अदितिके साथ धरापर मनुष्य-जन्म ले। सुरभिको भी मानवी होकर उत्पन्न होना होगा और वह गोपोंके मध्य रहकर अपनी सन्तानोंका सान्निध्य सुख पायेगी।

महर्षि कश्यपने सुना तो पत्नियोंके सहित ब्रह्मलोक जाकर पितामहकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया। वरुणको उनकी गाएँ लौटा दीं। सुप्रसन्न ब्रह्माजीने आश्वासन-वरदान दिया—'पृथ्वीपर जन्म लेनेपर आदिपुरुष तुम्हारे पुत्ररूपमें अवतीर्ण होंगे और सुरभि भगवान अनन्तकी जननी बनेंगी।'

महर्षि कश्यपके समान ही वासुदेवजी लोकपिता थे। उनको सब अपनी ही सन्तान लगते थे। किसीपर रुष्ट होते उन्हें किसीने देखा नहीं।

माता देवकीकी गुण-गाथा अनन्त है। वे वात्सल्यमयी तो कंसपर भी क्रोध नहीं कर सकी। वे उसे भी दयापूर्वक ही स्मरण करती थीं। 'भाई कंसको विधिने अपना खिलौना बना लिया'—यही वाक्य उनके मुखसे सदा कंसके लिये निकला।

भगवान अनन्तकी जननी रोहिणीजीको ब्रजमें दीर्घकाल तक रहना पड़ा। सुरभिकी अंशोद्भवा थीं।

स्वर्गीय सुरभिके समान ही सबके लिये नित्य सुप्रसन्ना, सर्वकाम-वर्षिणी, अनन्तवात्सल्यमयी। सम्पूर्ण कुलकी—यादव राजसदनकी वे अधिदेवता थीं और सुर भी आकर उनकी चरण-वन्दना ही करते थे।

माता देवकी महाराज उग्रसेनके अग्रज देवकजीकी सबसे छोटी कन्या थीं। मैंने सुना है कि कंसका जब वे शिशु थी, तबसे उनपर असीम स्नेह था। वैसे तो कंस अपने सभी स्वजनोंका बहुत ध्यान रखता था पहिले।

कंस कहता था—मैं अपनी छोटी बहिनका ऐसा विवाह करूँगा कि दीर्घकाल तक राजकुमारियाँ वैसे विवाहका स्वप्न देखा करेंगी।

माता देवकी शैशवसे शान्त-गम्भीर ही रही हैं। पितामही कहती थी कि यह बालिका नन्ही थी तब भी चपल नहीं थी। तब भी अपने खिलौने दूसरी सहेलियोंको बाँट देती थी। इसे तो तब भी पूजा खेल ही प्रिय लगता था—जब देखो, तब पूजा करनेमें लगी है।

महाराज उग्रसेनने अग्रजको प्रसन्न कर लिया इसके लिये कि देवकीका विवाह उनकी इच्छानुसार हो। महर्षि गर्गको उन्होंने पृथ्वीमें

देवकीके उपयुक्त वर ढूढ़नेको कहा और महर्षिकी यात्राकी व्यवस्था कर दी।

यदुकुलको सबने तभी महान भाग्यशाली समझ लिया था जब महर्षि गर्गने यादव पौरोहित्य स्वीकार कर लिया। भगवान शंकरके साक्षात् शिष्य, परम तपोधन, ज्योतिष शास्त्रके मूर्तिमान विग्रह गर्गाचार्यजी पौरोहित्य स्वीकार करेंगे, यह सम्भावना ही किसीको नहीं थी। जब यह सम्वाद मिला—पितामह भीष्म बोल उठे—"निश्चय यदुवंशका अतिशय उत्कर्ष-काल आ पहुँचा है। महर्षि गर्गको भी जिस कुलका पौरोहित्य पद प्रलुब्ध करे, उस कुलका उत्कर्ष, लगता है उन सर्वदर्शीको दीख गया कि परमपुरुष इस कुलमें आनेवाले हैं।"

पितामह जैसे भगवद्भक्त, धर्मैकमूर्ति, नैष्ठिक ब्रह्मचारीका मानस असत्यका स्पर्श नहीं करता—न कर सकता था। सबने तबसे ही यादव कुलसे अपने सम्बन्धको बहुत महत्व देना प्रारम्भ कर दिया था। देवी पृथा तबसे पितामहकी अतिशय स्नेह भाजन हो गयी थी।

महर्षि गर्गाचार्यजी अकस्मात् भ्रमण करते एक दिन मथुराकी राजसभामें आ गये थे। उनको कीर्तिसे भला कौन परिचित नहीं था। महाराज उग्रसेनने उनकी विधिवत् अर्चा करके उन्हें सन्तुष्ट किया और प्रार्थना की—"हम अपनेको कृतकृत्य मानते यदि आचार्यचरण यदुकुलके पौरोहित्यको स्वीकार करके हमको अपने अभय करोंकी छायामें ले लेते।"

महर्षिने एक क्षणको नेत्र वन्द किये और स्वीकृति दे दी। उसी दिन उनके आवासकी व्यवस्था मथुरामें महाराजने कर दी। सम्पूर्ण यदुवंशके पुरोहित होनेपर भी महर्षि अपने सात्वत कुलके यजमानोंको और विशेषतः पितामह शूरसेनजीके कुलको बहुत अधिक स्नेह देते थे।

वे वीतराग प्रसन्नतापूर्वक देवकीजीके लिये वर ढूढ़ने चले गये। वैसे इस कार्यके लिये उनसे अधिक उपयुक्त पात्र दूसरा हो नहीं सकता था। उन सर्वज्ञको तो कहीं किसीसे कुछ पूछना था नहीं। प्रसिद्ध राजकुलोंके कुमारोंको एक दृष्टि देखना मात्र था उन्हें।

आशाकी अपेक्षा बहुत शीघ्र महर्षि मथुरा लौट आये थे। उन्होंने महाराज उग्रसेनसे लौटकर कहा—"महाराज मैंने प्रमुख राजकुल देख लिये। एकान्तमें त्रिभुवनके—सुर असुर सबके प्रधान पुरुषोंकी कुण्डलियों पर विचार कर लिया। देवकीके लिये वसुदेवजीके अतिरिक्त त्रिभुवनमें दूसरा उपयुक्त वर नहीं है।"

कंस तत्काल उठ खड़ा हुआ था राजसभामें—"मैं प्रारम्भसे कह रहा हूँ कि बेचारी बालिका मथुरासे दूर भेज दी जायगी तो दुःखी हो जायगी। वैसे ही वह गूंगी जैसी है। अपने अभाव-कष्टकी बात कहना उसे आता नहीं है। उसके शील-स्वभावसे परिचित स्वजनोंसे दूर उसे कैसे भेजा जा सकता है। उसकी सब बहिनें जहाँ हैं, वहीं वह रहे।"

सचमुच कंसका प्रारम्भसे आग्रह था कि देवकीका विवाह वसुदेवजी-के साथ ही हो। प्रतिवाद सहन करना कंसके स्वभावमें नहीं था। देवकीजी-के प्रति अतिशय स्नेहके कारण पिताके निर्णयमें उसने पहिले बाधा नहीं दी थी। अब महर्षिकी बात सुनकर उसने निश्चित स्वरमें कहा—"महर्षि! आप मुहूर्त निश्चित करें।'

"शूरसेनजीसे पूछना होगा पुत्र।" महाराज उग्रसेनने हंसकर कहा—"वसुदेवजी भी अब बालक नहीं हैं। उनकी भी अनुमति आवश्यक है।"

"आप भी अद्भुत हैं महाराज।" कंस खुलकर हँसा। "शूरसेनजीको किसीकी भी प्रार्थना अस्वीकार करना आता है? नियम पूरा कर लें आप या पितृव्य देवकजी उन तापसके सम्मुख जाकर। वे तो स्वीकृति और आशीर्वाद देना ही जानते हैं। महर्षिकी मुहूर्त-गणना अनुमति देती हो तो मैं वसुदेवजीके पास अभी जा रहा हूँ।"

"तुम्हें अनुमति है तात!" महर्षिने कंसकी ओर देखकर गम्भीर वाणीमें कहा—"तुम प्रारम्भ करो। अथमें इतिका सदा सन्निवेश रहे, यही विधाताका विधान है।"

कंसने या किसीने नहीं ध्यान दिया आचार्यकी गूढ़वाणीपर। विवाह तो उसी दिन निश्चित हो गया। शूरसेनजीने सहर्ष नारियल स्वीकार कर लिया।

—+—

विवाह

कंस बड़े उत्साहसे पहुँचा था श्रीवसुदेवजाके भवन। वसुदेवजीने आगे आकर स्वागत किया उसका। भुजायें फैलाकर मिले और साथ-साथ भवनमें लाकर बोले—"युवराज अन्त:पुरमें पधारें। मेरे साथ जानेसे भाईसे मिलनेमें आपकी बहिनें कदाचित कुछ संकोच करें।"

"आपके अन्त:पुरमें तो मैं कुछ दिन पीछे जाऊँगा, जब अपनी एक और बहिनको वहाँ रहनेका प्रबन्ध करके साथ ले आऊँगा।" कंसने हँसते हुए कहा—"मुझे आप अनुमति तो देते हैं ?"

"अन्त:पुर आपकी बहिनोंका है, उनका भाई किसीको वहाँ बसाना चाहे तो मैं रोकने वाला कौन ?" वसुदेवजीने भी सहास्य ही कहा—"अनुमति ही लेनी है तो आप अपनी बहिनोंसे लीजिये।"

"देवकी सबको प्रिय है। सबके लिये बच्चीके समान है। उसे यहाँ कोई अस्वीकार नहीं करेगा। वह भी अपनी बड़ी बहिनोंमें रहेगी तो प्रसन्न रहेगी।" कंसने बात स्पष्ट कर दो—"मैं आपकी अनुमति लेने आया हूँ।"

"युवराज ! आप जानते हैं कि मैं इस सम्बन्धमें स्वाधीन नहीं हूँ। मेरी ही रुचिकी बात होती तो मैं तो मर्यादापुरुषोत्तमके समान एक पत्नी-व्रत अपनाता।" वसुदेवजोने बहुत गम्भीर होकर कहा—"किन्तु पितृ-चरणका मैं आज्ञानुवर्ती हूँ और जब वे किसीकी कन्याको अपनी पुत्रवधू बनानेकी स्वीकृति दे देते हैं, मैं क्या कर सकता हूँ।"

"तब मेरी सबसे छोटी बहिन—मेरी पुत्री जैसी देवकीको भी कृतार्थ ही करना है आपको।" कंस खुलकर हँसा—"इस बार स्वयं महाराज प्रार्थना करने गये हैं और आप जानते ही हैं कि आपके पितृचरण तो आशुतोष हैं। उनके चरणोंमें पहुँची प्रार्थनाको वे 'एवमस्तु' कहना ही जानते हैं !"

कंस वसुदेवजीसे भुजा फैलाकर मिला और साथ लाये उपहार भेंट करके लौट आया। वसुदेवजीने उपहार देखकर कहा था—"यह सामग्री युवराज !"

"यह गृह मेरी बहिनोंका है। भाईका स्वत्व है कि वह जो चाहे, यहाँ लाकर रखे।" कंसने अपने सहज अट्टहासके स्वरमें जाते-जाते कहा—"आपको केवल स्वीकार करनेका अधिकार है, निषेध करनेका अधिकार नहीं है।"

उसी दिनसे वसुदेवजीके अन्तःपुरमें देवी देवकीका कक्ष निश्चित हो गया और सभी अन्तःपुरकी सदस्यायें उसे सज्जित करनेमें सोल्लास लग गयीं। सबका एक ही स्वर था—"पिताजीने और महाराजने बहुत उत्तम निर्णय किया। देवकी इतनी भोली है कि कहीं अकेले जाकर तो अत्यन्त दुःखी हो जातीं। उस छुई-मुई-सी को पल-पल सम्हालनेवाली अभिभाविकायें आवश्यक हैं।"

महाराज उग्रसेन अपने अग्रज देवकीजीको लेकर ही श्रीशूरसेनजीके सदन पधारे थे। प्रणाम करके उन्होंने कहा—"हम दोनों प्रार्थना करने आये हैं कि आप अपने ज्येष्ठ पुत्रके लिये एक पुत्रवधू और स्वीकार कर लें।"

'अच्छा महाराज।' शूरसेनजीने तो यह भी नहीं पूछा कि उनकी यह होनेवाली पुत्रवधू कौन है।

पितामहने पूछा था कि 'किस कन्याके लिये यह प्रस्ताव है ?'

"महाराज स्वयं आये हैं तो कन्याका कुल क्या पूछना है।" शूरसेनजीने रोक दिया था—"वसुदेव तुम्हारा ही तो नहीं है। महाराजका भी पुत्र ही है वह। उसका विवाह महाराज करना चाहते हैं तो तुम्हें उचित पुत्रवधू मिलेगी।"

'हम देवकीके लिये प्रार्थना करने आये हैं।' महाराजने स्पष्ट कर दिया।

'देवकी !' पितामहीका अत्यधिक स्नेह देवकीजी पर है, यह सबको ज्ञात था। वे तो नाम लेकर ही मग्न हो गयीं।

"प्रार्थना कैसी महाराज !" शूरसेनजीने सुप्रसन्न कहा—"वसुदेव आपका है और हम भी आपके ही हैं।"

मथुरामें इस विवाहकी चर्चा प्रायः चला करती थी। इतना उल्लास इतनी महती नगरसज्जा, इतना सम्भार इस विवाहमें हुआ था कि किसीकी कल्पनामें भी यह नहीं आ सकता था।

महाराज उग्रसेन और उनके अग्रज देवकजीने अपनी सभी कन्याओंका विवाह शूरसेनजीके ही कुलमें किया था और किसी विवाहमें उन्होंने कोई कृपणता नहीं की थो ; किन्तु यह उनकी सबसे छोटी कन्याका विवाह था। उनको लगता था कि प्रत्येक बार कुछ न कुछ त्रुटि रह गयी है और इस वार सब त्रुटियोंको दूर करना है।

कंसका उत्साह सबसे अधिक था। उसने अपने सभी अनुगतों, मित्रोंको सन्देश भेज दिया था—'यह मेरी अनुजाका—मेरी पुत्री जैसी अनुजांका विवाह है।' अपनी दिग्विजयमें प्राप्त सब दुर्लभ सामग्री कंसने देवकीके दहेजके लिये सुरक्षित कर दी थीं। केवल आयुध, उद्दण्ड अश्व एवं महागज कुवलयापीड उसे शान्त प्रकृति वसुदेवजीके उपयुक्त नहीं लगे।

वैसे ही कंसकी आज्ञाकी उपेक्षा करनेका कोई साहस नहीं करता था और इस समय तो सभीमें आन्तरिक उल्लास था। इसपर भी कंस स्वयं सम्पूर्ण सामग्री साज-सज्जा आदिका निरीक्षण कर रहा था। सबसे अधिक उल्लास था उसमें—अकल्पित उत्साह।

असाधारण उत्साहकी प्रतिक्रिया भी असाधारण होती है। इसलिये पीछे जो कुछ हुआ, वह स्वाभाविक था।

केवल महर्षि गर्गाचार्य उन दिनों शान्त-गम्भीर थे। सभी पीछे वर्षों तक विवाह-चर्चाके साथ कहते रहे कि महर्षिके नेत्र अद्‌भुत गम्भीर थे उन दिनों किसी कार्यमें महर्षिने प्रमाद नहीं किया। जो आवश्यक था—सबका निर्देश किया और जो कराना था, सब कराया ; किन्तु उल्लास नहीं था उनमें।

कंसके स्वभावमें शीघ्रता थी, वह प्रतीक्षा करना जानता नहीं था। उसके आग्रहके कारण महर्षिको विवाहका मुहूर्त निकटका वह रखना पड़ा, जो उन्हें श्रेष्ठतम नहीं लग रहा था।

वृद्धायें अन्त तक कहती सुनी गयीं मथुरामें कि कंसके दुराग्रहके

कारण देवकीका पाणि-ग्रहण शीघ्रतामें हुआ। कंसने विवाह-मण्डपमें यद्यपि कहा नम्रतापूर्वक; किन्तु उसके स्वरमें आदेश एवं कठोरता भी स्पष्ट थे। उसने कहा था—"आचार्य! विचारी बालिका कल सायंसे उपवास किये है। वसुदेवजी तो उपवासको सह सकते हैं; किन्तु देवकी तो बच्ची है, आप विलम्ब कर रहे हैं! परिणय-क्रिया यथाशीघ्र समाप्त करनेकी कृपा करें।"

'अच्छा तात!' आचार्यने अन्यमनस्क भावसे कहा था—'मैं कुछ अधिक उत्तम लग्नकी प्रतीक्षा कर रहा था; किन्तु तुम्हारी इच्छा ही हो। नियतिको गर्ग टाल कैसे सकता है।' आचार्यने सचमुच शीघ्रताकी सभी क्रियाओंमें। उनके शब्दोंपर उस समय किसीने भी ध्यान नहीं दिया था।

दहेजकी गणना सम्भव नहीं थी। युवराज कंसने बहुत अधिक सामग्री पहिले ही वसुदेवजीके भवन भेज दी थी। अश्व, गज, रथ, गौयें आदिकी वहाँ संख्या मात्र सुना दी गयी। लगता था कि मथुराका सम्पूर्ण राजकोष ही दे दिया गया है।

भव्य सत्कार किया कंसने सबका और उस सत्कारके समय विनम्रताकी मूर्ति बन गया। उसने वसुदेवजीके सेवकों तकके चरण धोये—स्वयं उनको वस्त्राभरणसे सज्जित किया। वह रात्रि मथुराकी अन्तिम उल्लास भरी रात्रि बन जायगी, यह किसीको कहाँ पता था।

———

आकाशवाणी और......

विवाहके दूसरे दिन मध्याह्न-सत्कार करके वर-वधूको विदा करना था। कंसने स्वर्ण-निर्मित रत्नखचित रथ सज्जित किया। हिमश्वेत श्याम-कर्ण अश्व-चतुष्टय-युक्त वह रथ देखते ही बनता था। अद्भुत थी उसकी सज्जा।

सम्पूर्ण सज्जित सारथि बद्धाञ्जलि उपस्थित था। मंगल-गान एवं स्वस्तिपाठके मध्य वर-वधू उसपर विराजमान हुए। श्रीशूरसेनजी प्रातः ही अपनी आराधनाको आवश्यक मानकर महाराज उग्रसेनसे विदा लेकर चले गये थे। महाराज एवं देवकजीने नव-दम्पत्तिको आशीर्वाद दिया।

'युवराज आप ?' वसुदेवजीने देखा कि कंसने संकेतसे सारथिको रथके पृष्ठ-भागमें खड़े होनेके स्थानपर चले जानेको कहा और स्वयं कूदकर सारथिके स्थानपर आ बैठा है।

"मैं अपनी बहिनको उसके नवीन गृह तक पहुँचा आता हूँ।" कंसको अट्टहास करके हँसनेका अभ्यास था—"अभी वह आपसे अपरिचित प्राय है। इसकी बड़ी बहिनोंके समीप इसे छोड़कर मैं लौट आऊँगा। मुझे मथुरासे कहाँ बाहर जाना है। तनिक देख भी लेना है बहिनके नवीन गृहकी साज-सज्जा।"

"आप रथमें हमारे समीप विराजें।" वसुदेवजीने तनिक खिसककर कंसके लिये दाहिने भागमें स्थान बनाया।

"मुझे बहुत अच्छी प्रकार रथ-चालन आता है।" कंसने हँसकर कहा—"आपके लिये भयकी कोई बात नहीं है।"

'युवराज सर्वविद्या-निपुण हैं; किन्तु यह कर्म युवराजके उपयुक्त नहीं है।' वसुदेवजी जानते थे कि कंस दुराग्रही है, वह मानेगा नहीं। अन्तिम बार आग्रह किया उन्होंने।

'यादव राजकुमार अपनी अनुजाको उसके गृह तक पहुँचा आवे, यह तो गौरवकी बात है राजकुमारके लिये।' कंसने प्रग्रह उठा लिया था। अश्व चल पड़े मंद गतिसे। रथके चारों ओर घिरी नारियाँ थोड़े पद हट गयीं। शंखनाद गूँजा। ब्राह्मणोंने स्वस्तिपाठ किया। दम्पत्तिपर सुमन-वर्षा होने लगी पथके दोनों ओरसे।

'मूर्ख कंस !' आकाशसे एक वज्र-निष्ठुर शब्द गूँजा । चौंककर कंसने रथ-रश्मि खींच ली और घूरकर ऊपर देखा। उसके नेत्र अङ्गारके समान जल उठे । कौन है जो उसे इस प्रकार सम्बोधित करनेका साहस करता है ? किन्तु कहाँ—कहीं कोई दीखता नहीं और वह भयानक स्वर तो गूँज ही रहा है—

'तू जिसको सारथी बनकर पहुँचाने जा रहा है, उसका अष्टम गर्भ तेरा काल होगा।'

'मेरा काल ? मैं मरूँगा ?' कंस तो अपनेको अमर मानता है। उसने मृत्युको भले न जीता हो, देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली है और यम भी तो देवता ही है। सहसा धक्का लगा कंसके हृदयको। आकाशसे गूँजता शब्द समाप्त हो गया ; किन्तु दो क्षण वह आकाशको घूरता ही रहा।

'देवकीका अष्टम गर्भ मुझे मारेगा ?' कंसने घूमकर नववधूकी ओर देखा और रथसे कूद पड़ा । रथ-रश्मि उसके हाथोंसे पहिले ही छूट चुकी थी। दाहिने हाथसे कटिमें बँधे रत्नजटित कोशसे उसने अपना लम्बा खड्ग खींचा और झटकेसे देवकीका अवगुण्ठन शिरोवस्त्र खींचकर उनकी वेणी पकड़ ली।

'यह क्या करते हैं आप ?' वसुदेवजी कंसके रथसे कूदते ही चौंक पड़े थे। उन्होंने झपटकर कंसका तलवार उठानेवाला हाथ पकड़ा।

'मैं अपनी मृत्युके इस मूलको अभी मिटाये देता हूँ।' कंस क्रोधसे काँप रहा था। उसका स्वर विकृत हो चुका था । उसके शरीरसे स्वेद चलने लगा था।

"यह आपकी छोटी बहिन है ! आपकी पुत्रीके समान है और अभी-अभी आपने ही इसका विवाह किया है।" वसुदेवजी पूरी शक्तिसे दोनों हाथोंसे कंसका हाथ पकड़े हुए उससे कह रहे थे—"आप यदुवंशके गौरव हैं। आपका शौर्य त्रिभुवन में प्रख्यात है। एक स्त्रीका वध, वह भी अपनी कन्या जैसी बहिनका, सो भी विवाहके अवसरपर आप कैसे करने जा रहे हैं ?"

'यह मेरे मरणका हेतु है !' कंस काँप रहा था। वसुदेवजीके हाथसे अपना हाथ छुड़ा लेनेके प्रयत्नमें था । यदि-क्रोधाधिक्यके कारण उसका शरीर स्तम्भितप्राय न हो गया होता, उसके देहमें इतना कम्प न होता तो उस दुर्दमका कर वसुदेवजी दो क्षण भी रोक नहीं सकते थे।

जब भूखा व्याघ्र गायकी बछड़ीको दबा देता है, क्या अवस्था होती है उसकी ? देवी देवकीके मुखसे चीत्कार भी नहीं निकल सकी ; किन्तु इस समय उनकी दशा देखनेका किसीको अवकाश नहीं था ।

'युवराज !' जन्म लेनेके साथ ही देहधारीकी मृत्यु निश्चित हो जाती है । मरना सबको एक न एक दिन है ।' वसुदेवजीने पूरी शक्ति कंसका हाथ पकड़नेमें लगा रखी थी ; किन्तु बहुत नम्र स्वरमें कह रहे थे—'ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए कि मरनेके पश्चात् लोग निन्दा करें और अधोगतिको —घोर नरकको जाना पड़े ।'

'मरण ! मरण ! कैसा मरण ! नहीं मरना है मुझको ।' कंस चिल्लाया—मैं अपनी मृत्युके कारणको ध्वस्त कर दूँगा ।'

'छोड़ दो ! छोड़ दो इसे !' सहसा पथके दोनों ओरसे नागरिकोंकी पुकार आने लगी । अनेक लोग आगे बढ़ आये । वह जनसंख्या शीघ्रतासे बढ़ने लगी ।

'तुम्हें ऐसी कुबुद्धि कहाँसे आयी ?' कुछ यदुवृद्ध कंसके समीप आ गये । उन्होंने कहा—'तुम्हारा सुयश नष्ट करनेको किसी शत्रुने आकाशमें अदृश्य रहकर यह बात कही है । देवता तुम्हारे मित्र तो नहीं हैं ।'

कंसने मुड़कर कहनेवालेकी ओर देखा । उसके चित्तमें संशयका बीज पड़ गया ? किन्तु मृत्युकी आशंका वह सह नहीं सकता था ।

'देवता तुम्हारा जीवन चाहने वाले कबसे हो गये ? किसी अन्यने कहा—इसका कोई पुत्र तुम्हारा मारनेवाला होनेवाला हो तो देवता उसे छिपावेंगे—बचावेंगे या तुम्हें सूचना देकर उसकी या उसकी माताकी मृत्युका कारण बनेंगे ?

'जो होनी होती है, होकर रहती है । उसे रोका नहीं जा सकता । इसे छोड़ दो ।' किसीने भीड़में-से कहा ।

'कैसी होनी ? क्यों नहीं रोका जा सकता उसे ।' कंस अधिक उत्तेजित हो गया । देवताओंने झूँठ कहा होगा, यह बात मानकर वह कैसे निश्चिन्त रह सकता है । उसने हाथ छुड़ानेका प्रयत्न किया ।

'युवराज ! हम इस प्रकार यह क्रूरकर्म नहीं देख सकते ! छोड़ दो इसे ।' तरुणोंके एक पूरे समूहने गर्जनाकी । उनमें जिसके जो हाथमें आया था—तलवार, भाला, मुद्गर, परशु या दण्ड उसीको लेकर दौड़ आये थे । उनकी संख्या बढ़ती जा रही थी ।

कंस एकाकी था। मथुरासे बाहर तो वसुदेवजीको जाना नहीं था कि सुरक्षाके लिये सेनाकी व्यवस्था आवश्यक होती। राजमार्गके दोनों ओर स्वागतार्थ प्रस्तुत नागरिक ही थे और उनमें-से अब तरुण अस्त्र-शस्त्र उठाये दौड़े आ रहे थे। महाराज उग्रसेन तक समाचार देने अनेक दौड़ चुके थे; किन्तु महाराज आवें या कुछ करें, इतना अवकाश कहाँ था।

'आपको इस असहाय देवकीसे तो कोई भय है नहीं ?' वसुदेवजीने देख लिया था कि कंस समझानेसे मान नहीं सकता। किसी उपदेशका प्रभाव ग्रहण करनेकी स्थितिमें वह नहीं है। यह भी अनुभव कर रहे थे कि अधिक देर तक उसका हाथ रोकनेकी शक्ति उनमें नहीं है। सहसा ही कुछ निश्चय करके उन्होंने पूछा।

बहुत पीछे श्रीवसुदेवजीने स्वयं बतलाया था कि अचानक उनके चित्तमें उठा—'देवकीका पाणिग्रहण किया है उन्होंने। वह पति क्या जो प्राण देकर भी पत्नीकी रक्षा न कर सके; किन्तु कंससे युद्ध करके केवल प्राण दिये जा सकते हैं, देवकीको बचाया नहीं जा सकता। ये आसपासके उद्यत तरुण भी व्यर्थ मारे ही जायँगे। एकाकी कंस भी सबपर भारी है। अतः इस समय देवकीकी मृत्युको टाल देना प्रथम कर्तव्य है।'

'देवकीके पुत्र होंगे ही—क्या निश्चित है। पुत्रोंके होने तक क्या कंसकी मृत्यु असम्भव ही है ? पुत्र कभी आगे होगा और इस दयनीयाकी मृत्यु तो सिरपर आ खड़ी है। इस मृत्युको टालना ही है।'

'देवकीके अष्टम पुत्रसे तो है।' कंस दहाड़ा।

'इसे छोड़ दीजिये ! इसके जो पुत्र होंगे, उन्हें मैं जन्म लेते ही आपको दे दिया करूँगा।'

'क्या ?' कंसका हाथ थोड़ा ढीला पड़ गया।

'आपको देवकीसे तो कोई भय नहीं है ?' फिर पूछा वसुदेवजीने।

'नहीं, इससे मुझे क्या भय हो सकता है।' कंसने देवकीकी ओर देखा—'पर इसका अष्टम पुत्र····।'

'इसके पुत्र उत्पन्न होते ही मैं आपको स्वयं लाकर दे दिया करूँगा। मैं वचन देता हूँ।' वसुदेवजीने दृढ़ स्थिर स्वरमें कहा। वैसे कंसके हाथकी पकड़ उनकी अबभी वैसी ही थी।

'वसुदेव महात्मा पुरुष हैं। ये कभी असत्य नहीं बोलते । देवकीका केश छोड़ दो। स्त्री-हत्याके पापसे भी इससे बच जाओगे।' नागरिकोंमें-से प्रायः सबने एक स्वरसे कहा।

'आप वचन देते हैं ?' कंसने मुड़कर नागरिकोंकी ओर अब देखा। उसको एक बड़ी भीड़ दीखी। अनेकों लोग अस्त्र-शस्त्र लिये आघातको उद्यत थे। लोग दौड़े चले आ रहे थे। कंस डर जाय—ऐसा नहीं था ; किन्तु सबकी पुकार अनसुनी भी करना कठिन था।

'मैं वचन देता हूँ।' वसुदेवजीने शान्त स्वरमें कहा।

'अच्छी बात !' कंसने देवकीके केश छोड़ दिये। वसुदेवजीने उसका दाहिना हाथ छोड़ दिया। खड्गको कोशमें डालते हुए उसने कहा—'आप अपना व्रचन स्मरण रखें।'

वहींसे कंस मुड़ पड़ा राजसदन जानेको पैदल ही। पीछे खड़ा सारथि आगे आकर रथ-रश्मि सम्हाल ले, इसकी भी उसने अपेक्षा नहीं की। उसका अब जैसे वसुदेव-देवकीसे कोई सम्बन्ध ही नहीं रह गया था।

'हूँ !' नागरिकोंपर एक क्रोधभरी दृष्टि डालकर जाते-जाते उसने हुंकारकी थी। नागरिकोंने उसे और रथको भी मार्ग दे दिया। उसी दिनसे कंसके अन्तःकरणमें यादवोंके प्रति द्वेष जमकर बैठ गया।

—०० —

कंसका प्रयत्न

महाराज उग्रसेनको समाचार मिला तो वे तत्काल रथपर बैठ गये थे ; किन्तु उसी समय दूसरा समाचार मिला कि कंसने देवकीको छोड़ दिया और वे अपने सदन चले गये।

'तुमने देवकीपर खड्ग उठाया ?' क्रोधमें भरे महाराज उग्रसेन द्वार-पर ही खड़े थे, कंसको देखते ही वे उच्च स्वरमें बोले।

'उसका अष्टम गर्भ मुझे मारेगा, यह भी सुन लिया आपने ?' कंसने कोई हिचक अथवा नम्रता नहीं प्रदर्शित की। 'अनेकोंने मेरे विरुद्ध शस्त्र उठा लिया था वहाँ।'

'तुम अमर हो ?' उग्रसेनजीका स्वर तीक्ष्ण बना रहा—'तुम कभी मरोगे नहीं ? छोटी बहिनपर हाथ उठाते लज्जा नहीं आयी तुम्हें ? जिन्होंने शस्त्र उठाया वे प्रशंसाके—पुरस्कारके पात्र हैं। उनमें मनुष्यत्व जीवित है। तुम अब तक उनपर रोष लिये हो और अपने कर्मपर तुम्हें ग्लानि नहीं हो रही है ?'

'अपने मारनेवालेको मैं मार दूँगा।' कंसने भी उग्रस्वरमें ही कहा—'उसके रक्षकों—सहायकोंको भी।' उसने पिताकी उपेक्षा कर दी और अपने भवनकी ओर चला गया।

'ओह ! कुलांगार !' महाराज उग्रसेनने हाथ मल लिये। वे कुछ क्षण जाते कंसको घूरते रहे। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि इस अपने पुत्रको वे कैसे समझावें। मन्त्रियोंने आग्रह करके महाराजको राज-सदन पहुँचाया।

कंस सीधे अपने सदनके मुख्य कक्षमें गया और उसने अपने असुर मित्रोंको बुलानेके लिये सेवक भेज दिये ; किन्तु उसका चित्त अत्यन्त अशान्त था। उसे इस समय किसीपर विश्वास नहीं रह गया था। उसे लगता था कि उसके पिता भी उसकी मृत्यु चाहते हैं। वह अपने अन्तपुरमें पहुँच गया।

'आकाशवाणीने कहा है कि देवकीका अष्टम गर्भ मुझे मार देगा।'

अपनी दोनों रानियोंको बुलाकर उसने सुनाया—'तुमने यह सुन लिया या नहीं ?'

'दासी दौड़ी आयी थी तनिक देर पूर्व !' महारानी अस्तिने कहा—'वह कुछ ऐसा ही अमंगल सुनारही थी ; किन्तु मैंने उसे डाँटकर चुप कर दिया था ।'

'वह ठीक सुना रही थी ।' कंसने ध्यानसे रानियोंके मुखपर दृष्टि स्थिर की । वह उनकी प्रतिक्रिया समझ लेना चाहता था ।

'आपने देवकीको छोड़ क्यों दिया ?' छोटी रानी प्राप्तिका मुख अरुण हो उठा । उपद्रवकी जड़ तो वही है ।

'बहुत कलङ्क मिलता ।' रानी अस्ति अन्यन्त डरे हुए स्वरमें बोलीं—'उसे छोड़कर तो अच्छा किया आपने, किन्तु उसके आठवें गर्भकी उपेक्षा सर्वथा नहीं करनी है ।'

'वह नहीं ही करनी है ।' कंस अपनी रानियोंके भावसे सन्तुष्ट होकर बोला—'किन्तु तुम दोनोंको भी कुछ करना है ।'

'आज्ञा करें आप !' दोनोंने एक साथ कहा—'अपने सौभाग्यकी—सिन्दूरकी रक्षाके लिये हम प्राण भी देनेको प्रस्तुत हैं ।'

'किसीको पता नहीं लगना चाहिये कि तुम्हारा देवकीसे कोई द्वेष है ।' कंसने कहा—'तुम दोनों प्रतिदिन नियमसे वसुदेवके अन्तःपुरमें जाओ और देवकीसे मिलती रहो । देवकीको तथा वहाँ अन्तःपुरकी सभी स्त्रियोंको यही प्रतीत होना चाहिये कि तुम्हें देवकीसे पहिलेके समान ही प्रेम है। तुम्हें मेरे द्वारा देवकीका जो अपमान हुआ है, उसका बहुत दुःख है । देवकीके लिये उपयुक्त उपहार बार-बार ले जाना मत भूलो ।'

'आप अब भी उसे बहिन मानते हैं ?' चिढ़कर अस्तिने कहा ।

'पहिले पूरी बात सुन लो, ।' कंस गम्भीर बना रहा । 'वसुदेव देवकीको लेकर कहीं भाग गये तो समस्या बहुत कठिन हो जायगी । उनके मनका आतंक दूर होना चाहिये । देवकीको या किसीको सन्देह न हो, परन्तु देवकीपर सतर्क दृष्टि रखनी है । उसके रजस्वला होनेके दिनसे उसके गर्भवती होनेका पता लगाकर दिन गिनती रहो और मुझे सूचना दिया करो ।'

'कुछ विश्वस्त दासियाँ देवकीकी सेवामें रख दो । कुछ अपने

विश्वासके नपुंसक रक्षक देवकीके अन्तःपुरके रक्षकोंमें सम्मिलित कर दो।' कंसने फिर सावधान किया 'कड़ी दृष्टि रखो ; किन्तु उन्हें सन्देह मत होने दो। उनको यही लगना चाहिये कि अतिशय स्नेहके कारण ही तुम लोग वहाँ प्रतिदिन जाती हो और दास-दासियाँ वहाँ बढ़ा रही हो। वसुदेवपर दृष्टि रखनेकी व्यवस्था मैं कर लूँगा।

दोनों रानियोंने अपने स्वामीकी प्रशंसा की। उनकी योजनाको स्वीकार कर लिया और इस ओरसे कंसको निश्चिन्त रहनेको कहा।

'आप सबने सब कुछ सुन ही लिया है।' कंस अन्तःपुरसे अपने मन्त्रणा-कक्षमें आया तो वहाँ उसके असुर परिकरके लोग उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे—'यदुवंशियोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता। वे कभी भी विद्रोह कर सकते हैं और महाराज भी अभी उनके ही समर्थक हैं।'

'युवराज ! हम सबको देरसे सम्वाद मिला, अन्यथा हम उन उद्धत लोगोंको देख लेते।' एकने दाँत पीसकर कहा।

'यह अवसर भी आता ही लगता है।' कंसने एक बार सबकी ओर देखा—'वसुदेवकी सेवामें आज ही कुछ निपुण सेवक भेजने हैं जो अपने अत्यन्त विश्वस्त हों। वसुदेवको सन्देह नहीं होना चाहिये ; किन्तु उनकी प्रत्येक गतिविधिपर दृष्टि रखें वे और प्रतिदिन मुझे समाचार दें।'

'सेनामें और प्रशासनमें भी ऐसे कौन-कौन हैं जो किसी कठिनतम अवसरपर भी विचलित नहीं होंगे और मेरा साथ देंगे।' कंसने सबकी ओर एक बार घूमकर दृष्टि फिरायी—'मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि महाराजके विरुद्ध भी मेरा साथ देनेका अवसर आ सकता है।'

'हम केवल आपके सेवक—आपके आज्ञानुवर्ती हैं।' प्रायः सबने वहाँ स्वीकार किया—मथुराका सिंहासन आपका है। हम किसीकी आज्ञा मानते हैं तो आपके कारण है।'

'मुझे आप सबके सौहार्द्रपर विश्वास है।' कंसने कहा—किन्तु कोई चौंके नहीं, इस प्रकार सेना और शासनमें अपने पक्षके लोगोंका पता लगाइये। उनकी सूचना मुझे दीजिये। जो अन्य प्रलोभनसे अपने पक्षमें हो सकते हों, उनका भी पता लगा लेना है।'

'जो महाराज उग्रसेनके प्रति दृढ़ निष्ठावान है, उनसे कुछ मत

कहिये ।' कंसने सावधान किया—किन्तु वसुदेवके सहायकों, समर्थकोंका पता लगाकर अवश्य मुझे सूचना दे दीजिये ।'

उसी दिन कंसने पीठ, पैठिक और असिलोमको अपना मन्त्री चुन लिया । अपने अंग-रक्षक तथा अपने सदनके सेवकोंमें भी उसने परिवर्तन किया । सब असुर उसके परिकरोंमें आ गये । वैसे भी उसने बहुत कम यदुवंशियोंको निजी सेवक-सहायकों में लिया था । उसका स्वभाव ही उनसे नहीं मिलता था । अव जो नाममात्रके लोग थे भी, वे स्थानान्तरित कर दिये गये ।

वसुदेवजीकी सेवामें पर्याप्त अधिक दास भेजे गये । महाराज उग्रसेनके नामपर ही भेजे गये । वे सेवाके विशिष्ट कार्योंमें अत्यन्त निपुण हैं—यह कहकर महाराजसे कंसने स्वीकृति ले ली । देवकीजीकी सेवामें कंसकी रानियोंने सेवा-निपुण अनेक दासियाँ नियुक्त कीं ।

नाम मात्रके कारणपर सेनाके अनेक उच्चतम अधिकारी पदच्युत किये गये । युवराज कंस महासेनापति थे । महाराज उग्रसेनसे भी कुछ कोई कहे तो कोई परिणाम नहीं था । सेनामें बहुत परिवर्तन कंसने किया । उसने अपने समर्थक सेनाके सब प्रधान पदोंपर रख लिये ।

कंसके द्वारा निकाले या पदच्युत किये गये लोगोंकी अन्तिम पहुँच तो महाराज उग्रसेन तक ही थी । कंसने महाराजको स्पष्ट कह दिया—'अन्ततः मथुरा-नरेश कभी अश्वमेघ भी तो करेंगे । दिग्विजयके उपयुक्त सेना कैसे वनेगी, यह मैं समझता हूँ ।'

महाराजने केवल यह किया कि अपने अङ्ग-रक्षकोंमें सेनासे निकाले या पदच्युत किये लोगोंको ले लिया । अंगरक्षकोंकी संख्या पर्याप्त बढ़ा ली । वैसे कंसने इसपर कुढ़कर उनको चेतावनी दी थी— 'आप अयोग्य लोगोंकी एक व्यर्थ भीड़ अपने आसपास एकत्र कर रहे हैं ।'

कंसने प्रशासनके भी कुछ पदोंमें परिवर्तन किया ; किन्तु इस ओर अधिक परिवर्तन कर नहीं सकता था । उसे बहाने वनाकर महाराज उग्रसेन की सम्मति लेनी पड़नी थी और यह बात उसके स्वभावके अनुकूल नहीं थी । उसने कुछ नवीन पद बनाये और उन पर नियुक्तियाँ कर दीं ।

मथुरामें वसुदेवजीका अत्यधिक सम्मान करने वाले ही अधिक थे ।

स्वयं महाराज उग्रसेन उनका सम्मान करते थे। अब कंस ऐसे लोगोंकी सुविधायें कम करनेका कोई भी अवसर छोड़ता नहीं था। वह पहिलेसे कर लेनेमें कठोर था, अब यादवोंके लिये और कठोर हो गया।

कंसमें स्वजन, परिवार, सम्बन्धी जनोंके प्रति पहिले अतिशय ममता थी। इसके कारण इस वर्गको बहुत सुविधा और सम्मान राजसदनसे मिलता था। कंसके चित्तसे इस ममताका जैसे सर्वथा लोप हो गया। फलतः स्वजन-सम्बन्धियोंको मिलनेवाली विशेष सुविधायें क्रमशः बन्द हो गयीं और कंस सबकी उपेक्षा करने लगा। उसके नवीन अनुचर भी उपेक्षा करने लगे।

कंस स्वयं फिर वसुदेवजीसे मिलने नहीं गया। उसका अधिकांश समय अपने पक्षको दृढ़ करनेमें बीतने लगा। उसने अपने असुर मन्त्रियोंसे परामर्श करके निश्चय कर लिया था कि यदि अवसर ही आवेगा तो महाराज उग्रसेनके सक्रिय विरोधका सामना कैसे किया जायगा।

महाराज अपने इस उद्धत पुत्रसे उदासीन हो गये थे। कठिनाई यह थी कि कंसके सब छोटे भाई पिताकी अपेक्षा बड़े भाईको ही अधिक आदर देते थे। मथुराका वास्तविक शासन धीरे-धीरे कंसके करोंमें जा रहा था। महाराज इसे समझते थे; किन्तु वे प्रतिवाद करनेकी स्थितिमें नहीं थे।

देवकीका प्रथम गर्भ

'देवकी गर्भवती है।' कंसको यह समाचार सर्वप्रथम उसकी छोटी रानी प्राप्तिने दिया—'उसे दूसरा महीना चल रहा है।'

छोटी रानीने देवकीजीसे बहुत निकटता प्राप्त कर ली थी। उसे सबसे अधिक सुयोग मिल गया था समाचार पानेका। कंस उसे बराबर प्रोत्साहित करता रहता था। उसने इतना कृत्रिम स्नेह प्रदर्शित किया था कि वसुदेवजीके सदनमें उसे सब अत्यधिक स्नेहशीला मानने लगे थे।

'अभी तो यह प्रथम गर्भ है।' कंसने निश्चिन्त होकर कहा। 'फिर भी तुम प्रतिदिन वहाँ जाया करो। देवकीपर और अधिक सतर्क दृष्टि रखो। यह देखो कि उसे दोहद क्या होता है। वसुदेव कहीं देवकीको लेकर कभी भी भाग जा सकते हैं। अतः देवकीके समीप दिनभर तुम दोनोंमें से एक अवश्य रहे और रात्रिमें भी विश्वस्त सेविकायें रहें।'

'आप निश्चिन्त रहें।' रानीने सोत्साह कहा—'अब तो देवकीके समीप गर्भवतीकी परिचर्यामें निपुणा जो दासियाँ हैं, वही रहने लगी हैं और वे सब अपनी विश्वस्त हैं।'

'तुमको अब कोई श्रम नहीं करना चाहिये।' छोटी रानी देवकीजीके आसपास ही दिनभर बनी रहती थी—'यह तुम्हारे लिये प्रथम अवसर है और नारीके लिये यह प्रथम अवसर पर्याप्त कष्टकर होता है।'

'आप तो हैं ही और अनुभवी हैं आप।' देवकीजी सहज सरल हृदया—वे कंसकी रानियोंको अपनी हितैषिणी ही मानती थीं। उनसे यदाकदा परिहास कर लेती थीं। उनकी सूचनाओंका पालन करती थीं।

'अपने भाईके उस दिनके व्यवहारको मनमें मत रखना।' बड़ी रानीने एक दिन कहा था—'वे स्वभावसे उग्र हैं। क्रोध आनेपर उन्हें अपना-पराया नहीं सूझता; किन्तु अपने उस व्यवहारसे वे बहुत लज्जित हैं। मैंने उन्हें बहुत कहा; किन्तु वे संकोचवश तुम्हारे गृह आ नहीं पाते।'

'मैं जानती हूँ' देवकीजीकी वाणी छलहीन थी—'भैया मुझसे बहुत स्नेह करते हैं। उन्हें बहुत ग्लानि हुई होगी। लेकिन उन्हें खिन्न होनेका कोई कारण नहीं है।'

वसुदेवजीके सदनमें किसीको कंसके क्रूर हृदयका अनुमान नहीं था। कंस कोई आशंका भी करता है और उसकी रानियों अथवा उसकी भेजी दासियोंका सेवा एवं स्नेहके अतिरिक्त भी कोई प्रयोजन है, किसीको शंका नहीं हुई। कंसकी रानियाँ बहुत स्नेह दिखलाती थीं। कंसके यहाँसे आयी दासियाँ बहुत तत्पर थीं सेवामें और वे अपने कार्योंमें प्रर्याप्त कुशल थीं।

'उसे कोई दोहद नहीं होता।' कंसकी रानियोंने बहुत प्रयत्न किया, बहुत पूछा, किन्तु देवकीजीके मनमें कोई पदार्थ-सेवनकी, कुछ पानेकी, कहीं जानेकी या कोई विशेष कार्य करनेकी इच्छा ही नहीं होती थी।

'मुझे केवल चुप रहना अच्छा लगता है।' देवकीजीने बतलाया था— 'एक तन्द्रा जैसा भाव सदा बना रहता है। ऐसा आलस्य तो मुझे कभी नहीं आया था।'

'आलस्य तो पहिली वार आता ही है।' कंसकी रानीने समाधान कर दिया था।

'देवकी बचपनसे ही ऐसी है।' कंसने सुनकर रानीसे कहा था— 'उसे कभी किसी पदार्थके प्रति शैशवमें भी उत्सुक होते मैंने नहीं देखा। अवश्य वह देवमन्दिर जानेमें, व्रत-पूजामें उत्साह रखती थी और कोई ऋषि-मुनि आ जाय तो उसकी सेवाका कार्य करनेमें सबसे पहिले दौड़ती थी।' कंसके अन्तःकरणमें पूर्व-वात्सल्यका अंश कहीं अभी शेष था।

'वह अब भी नित्य स्नान-पूजन करती है।' रानीने कहा—व्रत तो गर्भवती नारीका स्वभाव हो जाता है; क्योंकि आहारसे उसे अरुचि हो जाती है। आग्रह करके उसे खिलाना पड़ता है, लेकिन देवकीमें इन दिनों तन्द्राका भाव अधिक रहता है।

किसीको कैसे पता लग सकता था कि माता-देवकीके गर्भमें आने वाले प्रथम षड्गर्भ दैत्येन्द्र बलिके यहाँ पातालमें प्रायः सोते ही रहते हैं। वे वहाँ इस समय दीर्घनिद्रामें माने जाते हैं। योगमायाने उनके जीव आकर्षित करना प्रारम्भ किया है देवकीके उदरमें। यह प्रथम जो आया है, वह और आगे आने वाले उसके पाँच अनुज सहज निद्रालु हैं। उनकी स्वभावगत निद्रा माताके प्रबल सत्वगुणको केवल आलस्य और तन्द्रा बना पाती है।

'वसुदेवके भवनमें कोई उल्लास-उत्साह नहीं है।' कंसको यह समाचार भी सब समाचारोंके समान अनेक सूत्रोंसे मिल रहा था। 'देवकीके सन्तान होने वाली है, यह देवकोको देखकर ही जाना जा सकता है। अन्तःपुरमें तो आवश्यक प्रस्तुति भी आपकी सेविकाओंने ही की है।'

'जिसे रहना ही नहीं है, उसके आनेका उत्सव क्या।' वसुदेवजीकी सभी रानियों-सेविकाओंके मुखपर गम्भीर वेदनाकी छाया जैसे जमकर बैठ गयी है। चाहे जो दीर्घ निःश्वास लेकर कभी कह देती है—'बेचारी दुखिया देवकी।'

'वसुदेव अतिशय गम्भीर हो गये हैं इन दिनों।' कंसको यह समाचार भी मिलता रहता है—'वे बहुत कम बोलते हैं। किसी काममें जैसे उन्हें कोई रुचि ही नहीं रही है। स्नान-सन्ध्या, पूजन यन्त्र-चालितकी भाँति करते हैं। भोजनके लिये कहनेपर वह भी यन्त्रके समान कर लेते हैं। सदा कुछ चिन्तन-सा करते रहते हैं।'

'उनपर दृष्टि रखे रहो! अत्यन्त सतर्क दृष्टि बनाये रहो।' कंसको एक ही बात कहनी रहती है—'वे किस-किससे मिलते हैं, किससे एकान्तमें मिलते हैं, यह देखो।'

'वे अपनी ओरसे तो किसीसे मिलते ही नहीं।' कंसके विश्वस्त सेवकोंने सदा यही समाचार दिया—'कोई मिलने आता भी है तो अत्यन्त संक्षिप्त उत्तर उसकी बातका देकर उसे विदा कर देते हैं।'

'हम आपके साथ हैं। आपकी सन्तानकी रक्षाके लिये हम प्राण तक देनेको प्रस्तुत हैं।' अनेक यादव-तरुण वसुदेवजीके पास आये। कंसके अनुचर उसे उनका नाम बतला देते हैं; किन्तु वसुदेवजी किसीको प्रोत्साहित नहीं करते, वे कहते हैं—'भगवान नारायणकी इच्छा पूर्ण हो। सत्य स्वयं नारायण है। उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।'

'वे लोग और भी हैं।' कंस कहता है—'वसुदेवके समीप तक केवल उनके प्रमुख आते है। मैं इन सबको देख लूँगा।'

ऐसे आने वाले क्रमशः घटते गये। वसुदेवजीने प्रोत्साहन नहीं दिया, सहयोगका उत्साह नहीं दिखाया तो सब स्वतः शान्त हो गये।

वह समय भी आया जब देवकीको सन्तान होनी थी। वसुदेवजीकी प्रायः सब पत्नियाँ प्रसूति-कक्षमें ही थीं। कंसकी दोनों रानियाँ पिछली रात्रिसे राजसदन नहीं गयी थीं। कंसकी भेजी परिचारिकायें तो थीं ही।

एक दरिद्रके घर भी पुत्र होता है तो कमसे-कम फूटी थाली तो बजायी ही जाती है। वसुदेवजीके कई पुत्र हुए थे और मथुरामें राजकुमार होनेका महोत्सव हुआ था; किन्तु इस बार—इस बार तो सबके मुखपर गम्भीर वेदना थी। कंसकी भेजी एक परिचारिकाने कृत्रिम उत्साह दिखाकर शिशुके धरापर आते ही दौड़कर कांस्यपात्र उठाया बजानेको, तो रोहिणी देवीने पात्र छीन लिया उसके हाथसे और ऐसे आग्नेय नेत्रोंसे देखा कि किसीको फिर साहस नहीं हुआ।

कहाँका नान्दीमुख श्राद्ध और कहाँका जातकर्म—यदुकुल पुरोहित गर्गाचार्यजीको समाचार भी नहीं भेजा गया। एक परिचारिकाने दौड़कर पाषाण-प्रतिमाके समान बैठे वसुदेवजीको समाचार दिया तो बोले—नालोच्छेदन कर लो, कंसके पास उसे ले जाना है मुझे।'

शीघ्रतामें नालोच्छेदन हुआ और तभी वसुदेवजी प्रसूति-कक्षके द्वारपर आ खड़े हुए। उन्होंने दोनों भुजायें फैलाकर शिशुको मांगा संकेत से। उनके नेत्र लाल हो रहे थे। उनमें अश्रु तक सूख गये थे।

'स्वामी !' देवकीने चीत्कार किया। 'इसे बचाया नहीं जा सकता ?' वह कातर कण्ठ, वे प्राणोंकी भिक्षा माँगते नेत्र।

'देवि ! सत्य नारायण हैं।' कठिनाईसे वसुदेवजीने इतना कहा और आगे बढ़कर स्वयं शिशुकों उठा लिया। वे समझ गये थे कि यहाँ दो क्षण भी रुकनेका अर्थ है कि प्रतिज्ञा-निर्वाहमें प्राण असमर्थ हो जायेंगे।

अन्तःपुर क्रन्दनसे—चीत्कारोंसे गूँज उठा। देवकी देवी मूर्छित हो गयीं। केवल कंसकी दासियाँ और रानियाँ स्वस्थ थीं। रानियोंमें एकने देवकीको उठाया। दूसरीने कहा—'इतना रुदन-क्रन्दन क्यों ? ऐसी क्या विपत्ति आ गयी है ? वसुदेवजी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके अभी लौटेंगे। मामाको भानजेका मुख ही तो दिखलाने गये हैं। शिशु तो अभी लौट आवेगा।'

'वे इस पर भला क्रोध करेंगे ? यह तो प्रथम सन्तान है।' दूसरी रानीने कहा—'कोई भय भी उन्हें होगा तो आठवीं सन्तानसे होगा।'

कंसकी रानियोंको देवकीके अन्तःपुरका यह रुदन सर्वथा अप्रिय लगा था। कंसके प्रति यहाँकी घृणा—अविश्वास असह्य था उन्हें। अतः बहाना बनाया उन्होंने जानेका—'हम देखती हैं कि वे शिशुका भानजेका कैसा सत्कार करते हैं ?

कंसकी दोनों रानियाँ रथमें बैठकर अपने सदन चली गयीं। विश्वस्त दासियोंको उन्होंने वहीं रहने और समाचार देते रहनेका संकेत जाते-जाते कर दिया।

'हाँ, इससे युवराजको कोई भय तो है नहीं। अतःपुरकी महिलाओंमें कंसकी रानियोंकी बातसे आश्वासन ही मिला था। शिशु लौट आवेगा, इस आशानै रुदन-क्रन्दन रोक दिया। देवकीजी भी आशान्वित हो उठी थीं। सब उत्सुकतासे वसुदेवजीके लौटनेकी प्रतीक्षा करने लगीं।

'कीर्तिमन्त।' शिशुको करोंमें उठाकर केवल एक बार वसुदेवजीने उसे देखा और नामकरण कर दिया था। दूसरी बार उसके मुखपर दृष्टि उन्होंने नहीं डाली। दृष्टि पड़ेगी तो मोह हृदयको दुर्बल कर देगा—यह वे जानते थे। बालक रुदन क्यों नहीं कर रहा है, यह भी उनके ध्यानमें नहीं आया। उनके चित्तकी अवस्था यह सब सोचने योग्य नहीं थी। वे बिना किसी ओर देखे सिर झुकाये पैदल कंसके भवनकी ओर तीव्र गतिसे पद उठाते जा रहे थे।

—×—

कंसकी कृपा

'धन्य है वसुदेवजी।' शिशुको लेकर राजपथसे वसुदेवजीको कंस-भवनकी ओर जाते देखकर नागरिक श्रद्धा-विभोर हो उठे—'धन्य है वसुदेवजीका सत्य-प्रेम। सत्यके प्रति ऐसी निष्ठा लोकमें दुर्लभ है।'

'वसुदेवजी महापुरुष हैं। अन्यथा अपना नवजात पुत्र कौन राक्षसको इस प्रकार देने जायगा।' जबसे कंसने राजपथपर देवकीका केश पकड़ा था, उसके प्रति अधिकांश नागरिकोंके हृदयका सम्मान समाप्त हो गया था। लोग उसे राक्षस कहने लगे थे। वे कहते थे—'जो अपनी छोटी बहिनको विवाहके दिन मारनेको उद्यत हो गया, वह मनुष्य नहीं हो सकता। वह कोई भी दुष्कर्म कभी भी कर सकता है।'

'कंस इस शिशुका क्या करेगा?' अनेकोंके मनमें प्रश्न उठा। कुछने परस्पर कहा भी।

'यह देवकीका प्रथम पुत्र है । इससे कंसको कोई भय तो है नहीं ।' यही एक आश्वासन था सबके लिये और इसीसे किसीने कोई सक्रिय पद नहीं उठाया । सब प्रतीक्षा करनेके पक्षमें थे ।

'कंस कुछ भी करे, वसुदेवजीका धैर्य अद्भुत है ।' यदुवृद्धोंने भी प्रशंसाकी 'इतना धैर्य, इतनी हृदयकी दृढ़ता सुननेमें भी कम हो आती है ।'

वसुदेवजीका ध्यान इन सब बातोंकी ओर नहीं था। उनके कर्ण जैसे बहरे हो गये थे । पथमें कोई सामने मिलता भी है, यह भी वे देख नहीं पाते थे । वे केवल चल रहे थे । तीव्र गतिसे उनके पद उठते जा रहे थे ।

कंसको उसके सेवकोंने पहिले ही सब समाचार दे दिया था । पुत्र हुआ और तत्काल उसे लेकर वसुदेव आ रहे हैं, इस समाचारसे कंस प्रसन्न हुआ । वसुदेव इतनी तत्परतासे अपने वचनका पालन करेंगे, ऐसी आशा उसे नहीं थी । वह समझता था कि पहिले वसुदेवका सन्देश आवेगा— 'युवराज ! आपके भाग्नेय हुआ है । आप पधारेंगे यहाँ अथवा जातकर्मादिके अनन्तर मैं उसे आपके समीप ले आऊँ ? आप अनुमति दें तो उसे षष्ठी-पूजनके अनन्तर सातवें दिन आपके सम्मुख उपस्थित करूँ ।'

कंसने सोचा था कि वसुदेवजीकी ऐसी किसी प्रार्थनाको वह उदारता-पूर्वक स्वीकृति दे देगा ; किन्तु वसुदेव तत्काल बालकको लेकर चल पड़े हैं, इस समाचारको पाकर वह सन्तुष्ट हुआ । 'वसुदेव अपने वचनपर दृढ़ रहने वाले हैं ।' उसके हृदयने स्वीकार किया । वह अपने भवनके सभागृहमें अपने सिंहासनपर आकर बैठ गया ।

'वसुदेवजीको तत्काल मेरे सामने पहुँचाया जाय !' कंसने प्रहरीको आज्ञा दे दी । इधर वह यदुवंशियोंसे सशंक रहने लगा था । उसके भवनपर उसके विश्वस्त प्रहरी नियुक्त थे और स्वजन-सम्बन्धी भी अब बिना अनुमतिके भवनमें प्रवेश नहीं पाते थे ।

'युवराज आपके आगमनकी प्रतीक्षा ही कर रहे हैं !' प्रहरीने वसुदेवजीको अभिवादन करके उन्हें सभाकक्षमें जानेका संकेत कर दिया ।

'युवराज ! यह रहा आपका भाग्नेय !' वसुदेवजीने कंसके सम्मुख पहुँचकर नवजात बालकको दोनों हाथोंपर रखे हुए उपहारकी भाँति हाथ बढ़ा दिया आगेकी ओर ।

अग्निके समान शिशु—वह सो रहा था—मार्गमें भी सोता ही रहा था । कंसने केवल एक दृष्टि डाली उसपर और बोला—'आप इसे लौटा ले

जायँ ! इससे तो मुझे कोई भय नहीं । देवकीके आठवें पुत्रके द्वारा मेरी मृत्यु कही गयी है ।'

अत्यन्त स्नेहभाजना छोटी बहिनका प्रथम पुत्र सामने आया ; किन्तु कंसके चित्तमें अब देवकीके प्रति ममत्वका तो लेश भी नहीं रहा है । वह तो 'इसे लौटा ले जायँ !' कहकर उठ खड़ा हुआ भवनमें जानेके लिये ।

'जैसी आपकी अनुमति !' वसुदेवजी शिशुको हृदयसे लगाकर लौट पड़े । कंस खड़ा-खड़ा उन्हें जाते देखता रहा और फिर अपने आसनपर बैठ गया ।

'वसुदेवमें उत्साह-उल्लास क्यों नहीं आया ? पुत्रको जीवनदान मिला—पर ये वैसे ही उदास-गम्भीर ?' कंसको इसका कोई समाधान नहीं मिल रहा था । वह इस बातको लेकर सोचने लगा ।

'कंसने शिशुको लौटा दिया !' वसुदेवजीको लौटते देखकर नागरिकों-को प्रसन्नता हुई ।

'सचमुच वसुदेवजी महापुरुष हैं ।' लोगोंमें चर्चा चल पड़ी—'ये हर्ष-शोकसे ऊपर है । पुत्रको कंसके पास ले जाते समय जैसे गम्भीर थे, उसे लौटा-ले-जाते समय भी वैसे ही शान्त हैं ।'

वसुदेवजी सचमुच बहुत शान्त जा रहे थे । वे अब भी किसी ओर देख नहीं रहे थे । अब भी उनके पद उसी तीव्र गतिसे उठ रहे थे ।

'वसुदेवजी लौट रहे हैं ।' वसुदेवजीके द्वारपर प्रतीक्षा करती नारियों-ने दौड़कर भीतर संवाद दिया—'शिशु सकुशल लौट आया है ।'

भवनमें उत्साह छा गया था, किन्तु वसुदेवसीने इसपर भी ध्यान नहीं दिया । किसीने उनसे कुछ पूछा—यह भी उन्होंने नहीं सुना । 'कंसने क्या कहा ?' किसीके इस प्रश्नका उन्होंने उत्तर नहीं दिया । वे सीधे वैसे ही प्रसूति-कक्ष तक चले गये और शिशुको देवकीकी ओर बढ़ाते हुए बोले—'देवि, इसे लो ।'

'आगया मेरा लाल !' माताने ललककर पतिके हाथोंसे शिशुको उठाया और हृदयसे लगा लिया ।

भवनकी महिलाओंमें किसीने अब कोई वाद्य उठाया और किसीके मंगल-गानका स्वर उठा ; किन्तु वसुदेवजीने हाथके संकेतसे मना कर दिया । सब फिर सशंक हो उठीं ।

'बहुत प्रसन्न होनेकी कोई बात नहीं है ।' वसुदेवजीने देवकीसे कहा—'जितने क्षण यह तुम्हारे अंकमें है, इसे स्नेह कर लो ।'

'युवराजने क्या कहा है ? 'आज देवकीजी भीं कंसको भैया नहीं कह सकी थीं ।

'कहा तो इतना ही कि इससे मुझे कोई भय नहीं है, अतः इसे लौटा ले जाइये !' वसुदेवजीने कहा—'किन्तु मेरा हृदय इसपर विश्वास नहीं कर पा रहा है । तुम जानती हो कि मेरे हृदयमें अकारण आशंका नहीं उठती । युवराज कब अपना निर्णय परिवर्तित कर देंगे, यह कुछ कहा नहीं जा सकता ।'

वसुदेवजी इतना कहकर अन्तःपुरसे निकल आये । महिलाओंका उत्साह समाप्त हो गया । देवकीजीके अंकमें जाकर वह शिशु चुपचाप उनका अमृत पयपान करने लगा था । माताको अपने मृत्युके मुखसे लौटे लालको देखनेसे ही अवकाश नहीं था ।

'इसका जातकर्म ?' किसीने अन्तःपुरमें प्रश्न किया ।

'नान्दीमुख श्राद्ध तो हो नहीं सकता ।' एकने कहा—'वह नालोच्छेदन-के पूर्व ही होता है । आपत्तिकालके कारण नालोच्छेदन तत्काल करना पड़ा, अतः अब जातकर्म कैसा ? अब तो जात-सूतक प्रारम्भ हो चुका है । अब तो यह बारह दिनका हो जाय तभी सब कर्म एक साथ किये जायेंगे ।

'महर्षि गर्गाचार्यजी भी तभी पधारेंगे ?' किसीने पूछा ।

'नालोच्छेदनके पूर्व आ जाते तो आ जाते । देव-पितृ पूजन, दान, श्राद्ध तभी तक सम्भव रहता है ।' नारियाँ इस प्रकारकी चर्चासे दुःखी-क्षुब्ध ही हुईं ।

देवर्षि आये

'श्रीमन्नारायण नारायण नारायण ।'

वातावरण देवर्षिकी वीणा-झंकार और भगवन्नाम ध्वनिसे गूँज उठा । देवर्षि नारदके लिये सुर-असुर सबका भवन सदा स्वागतको प्रस्तुत रहता है । सच्चे अर्थमें देवर्षि अजातशत्रु हैं । वे कब कहाँ पहुँच जायेंगे और क्या करेंगे, कोई अनुमान नहीं कर सकता ।

देवर्षि श्रीहरिके मूर्तिमान मन हैं । अतः जो भगवदेच्छा, वह नारदजी-का कर्म । अकस्मात् एक अद्भुत ज्योति और दिव्यगन्धसे कंसका कक्ष भर उठा ।

कंस उठे-उठे, इतनेमें तो वीणा लिये, खड़ाऊँ पहिने देवर्षि सम्मुख आ खड़े हुए। कंसने अञ्जलि बाँधकर प्रणिपात किया।

'रुको ! पहिले मेरी बात सुन लो।' कंस पूजाकी सामग्री मंगाने जा रहा था, परन्तु देवर्षिने उसे यह सौभाग्य नहीं दिया—'तुमपर स्नेह होनेके कारण मैं यहाँ आ गया हूँ, अन्यथा तुम जानते हो कि मैं सदा शीघ्रतामें रहता हूँ।'

कंस हाथ जोड़े सम्मुख खड़ा रहा । देवर्षि कहते गये—'आश्चर्य है कि महासुर कालनेमि अपनेको भी भूल गये हैं।'

कंसको उसकी जन्म-कथा सुनाकर देवर्षिने यह तो बतला ही दिया वह द्रुमिल दानव द्वारा उत्पन्न है और कालनेमि है। साथ ही यह भी बतलाया—'देवताओंने सुमेरु पर्वतपर तुम्हारे वधके सम्बन्धमें मन्त्रणाकी है। मैं उस समय वहीं था । श्रीनारायणने देवताओंकी सहायता करना स्वीकार कर लिया है। देवताओंमें अधिकांश अपने अंशसे पृथ्वीपर जन्म ले चुके हैं। जो शेष हैं, वे क्रमशः जन्म लेने वाले हैं।'

'तुम्हारे पिता—जिनको तुम पिता मानते हो केवल क्षेत्रज पुत्र होनेके कारण, वे उग्रसेन प्रजापतिके अंश हैं। उनके भाई देवकके रूपमें गन्धर्वराज आये हैं। वसुदेव कश्यप हैं और आदिति हैं देवकी।' नारदजीने संक्षिप्त ढंगसे कह दिया—'तुम्हारे यहाँ अधिकांश यदुवंशी देवांशसे उत्पन्न हुए हैं। इनकी पत्नियाँ भी देवांगनायें हैं । यही अवस्था नन्दगोकुलकी—पूरे व्रज-मण्डलकी और हस्तिनापुरकी भी है।'

'पृथ्वीपर इस समय दो प्रकारके ही राजपुरुष प्रायः हैं। एक देवांशसे उत्पन्न और दूसरे असुरांशसे उत्पन्न । जरासन्धादि तुम्हारे मित्र असुर हैं जो देवासुर-संग्राममें मारे गये थे और अब पृथ्वीपर मनुष्य-रूपमें जन्म ग्रहण करके तुम्हारे सहायक हो गये हैं।'

कंस मुस्कराया । यह देखकर देवर्षिने कहा—'मैं जानता हूँ कि तुम क्या सोच रहे हो। तुम यही तो सोच रहे हो कि नारद कुछ अधिक बुद्धिमान नहीं हैं । केवल झगड़ा लगाना इन्हें आता है। युद्धमें साक्षात् देवता उपस्थित थे और तब भी पराजित हो गये तो अब पृथ्वीपर अंश रूपसे जन्म लेकर तुम्हारा क्या बिगाड़ लेंगे ?'

'तुम नीतिज्ञ हो !' देवर्षिने प्रशंसा की कंसकी—'अतः जानते हो कि शत्रु कितना भी छोटा हो, उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । देवता इस बार तुम्हारे ही स्वजन-परिजन बनकर प्रकट हुए हैं।'

'आप ठीक कहते हैं।' कंसने कहा—'मैंने अमरावतीपर चढ़ायी की है, यह समाचार मिलते ही महाराजने मुझे लौटनेकी आज्ञा भेज दी थी। उन्होंने मुझे त्रिभुवनजयी नहीं होने दिया, यद्यपि तब वे ही त्रिभुवन-सम्राट् कहे जाते। ये यदुवंशी तो अब शस्त्र उठाकर मेरा विरोध करने लगे हैं। मैं इन सबको देख लूँगा।'

'तुमने वसुदेवजीके बालकको लौटा दिया ?' देवर्षिने आश्चर्यपूर्ण स्वरमें पूछा।

'हाँ—उससे तो मुझे कोई भय नहीं है।' कंस चौंक गया था और उसका स्वर कह रहा था कि मुझसे कोई भूल हो गयी क्या ?

'देवकीके अष्टम गर्भसे तुम्हें भय है, यही तो आकाशवाणीने कहा था ?' नारदजीने तनिक झुककर भूमिपर अंगुलीसे गोलाईमें आठ रेखाएँ खींच कर कहा—'तनिक बतलाओ तो कि इनमें अष्टम कौन है ?'

रेखाएँ वहाँ दीख नहीं रही थीं। उस कुट्टिम भूमिपर रेखा केवल अंगुलीसे नहीं बन सकती थी; किन्तु कंसको देवर्षिका अभिप्राय समझनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। वह इस प्रकार उस स्थानको घूर रहा था जैसे वहाँ उसको प्राणदण्ड देनेका आदेशपत्र ही पड़ा हो। उसके भालपर स्वेदकी बड़ी-बड़ी बूँदें चमकने लगीं थीं।

'अङ्कानां वामतो गतिः' यह तुम जानते ही हो। 'नारदजीने कहा—'नारायणने सदा असुरोंको छलसे मारा है। इस बार वे छल नहीं करेंगे, इसीका क्या ठिकाना है। अतः देवता देवकीके गर्भोंको वृत्त मानकर कहाँसे गणना प्रारम्भ करेंगे और किसे अष्टम घोषित कर देंगे, यह कैसे कहा जा सकता है।'

'अच्छा, नारायण हरि' देवर्षि उठ खड़े हुए—'मैंने तो स्नेहवश तुम्हें एक चेतावनी दी है।' कंस अभिवादन करे, इसका भी अवकाश देवर्षिने नहीं दिया। वे तो वहीं कक्षमें ही अदृश्य हो गये।

'आपने कंसको शिशु-हत्यामें क्यों प्रवृत्त किया ?' एक बार हस्तिनापुर जब देवर्षि पधारे तो विदुरजीने उनसे पूछा था।

'दो प्रयोजन थे।' देवर्षिने कहा था—'स्वायम्भुव मन्वन्तरमें प्रजापति मरीचिकी पत्नी उर्णासे छः पुत्र हुए। वे विद्वान थे, शास्त्रज्ञ देवता थे। सृष्टिकर्ता जब भगवती सरस्वतीको देखकर क्षोभको प्राप्त हुए तो इन छहोंको हँसी आ गयी। इससे कुपित होकर इन्हें ब्रह्माजीने शाप दे दिया—'तुम अपने पितामहका अपमान करते हो, इसलिये असुर हो जाओ।'

'छहोंने ब्रह्माजीकी स्तुतिकी । प्रजापति मरीचने भी क्षमा माँगी । ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर कहा—'परमपुरुष अवतीर्ण होकर इनका उद्धार करेंगे ।'

'वे छः षड्गर्भ नामसे दैत्य कालनेमिके पुत्र बनकर उत्पन्न हुए ।' देवर्षिने बतलाया—'देवासुर युद्धमें मारे गये और फिर हिरण्यकशिपुके पुत्र होकर उत्पन्न हुए । अपने पिताका अनुकरण करके इन्होंने भी कठोर तप किया । इनके तपसे प्रसन्न ब्रह्माजीने जब सम्मुख आकर इन्हें वरदान माँगनेको कहा, तब इन्होंने माँगा—'हम देवता, गन्धर्व, किन्नरादिसे अवध्य हों ।'

ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहा और स्वधाम चले गये ; किन्तु जब लौटकर इन्होंने हिरण्यकशिपुको अपने वरदानका समाचार दिया तो वह क्रुद्ध हो उठा—'मूर्खो ! तुम यह परम्परा चलाना चाहते हो कि मेरे कुलके लोग ही मुझे छोड़कर अन्यकी आराधना करें और मनमाना वरदान प्राप्त करें । तुम तो मेरे पुत्र थे, मेरी आराधनाके बिना भी मुझसे वरदान पा सकते थे । तुम अत्यन्त अज्ञानी हो, अतः मैं तुम्हारा त्याग करता हूँ । तुम सुतलमें जाकर दीर्घकाल तक निद्राके वशवर्ती रहो, तुम्हारे पूर्वजन्मका पिता ही तुम्हारा वध करेगा ।'

'अन्ततः हिरण्यकशिपु भगवत्पार्षद विजय ही तो है ।' देवर्षिने कहा—'उसका शाप सत्य होना चाहिये था । कालनेमिने कंसके रूपमें जन्म लिया, अब वह अपने पुत्रोंका वध न करता तो वह शाप कैसे सत्य होता ? भगवान नारायणके आदेशसे योगमाया उन षड्गर्भको क्रमशः देवकीके गर्भमें स्थापित कर रही थीं । सुतलमें सदा निद्रामें सुप्त रहनेवाले षड्गर्भोंके शरीर कितने समय अविकृत रहते, यदि यहाँ कंस शिशुओंको मारकर उनके सूक्ष्म शरीरको अपने दैत्यदेहमें जानेके लिये स्वतन्त्र न करता रहता ।'

'दूसरा प्रयोजन भी था ।' देवर्षिने स्वयं ही बतलाया था—'सृष्टि-कर्ताका शाप भगवान वासुदेवका सान्निध्य प्राप्त करके समाप्त हो जाना था । उस समय तो देवकीके इन छहों पुत्रोंके अपने स्वरूप—ब्रह्मलोकमें देवता होकर जाना ही था । लेकिन तब इनका कंस वध करता, यह कितना अप्रिय और अमंगल कार्य होता ।'

हिरण्यकशिपुके शापके कारण जब कंसके करोंसे इनका वध होना ही था तो देवर्षिका निर्णय उचित था । वे कुमार बड़े हुए होते तो माताका मोह उनमें और भी अधिक होता और तब उनके वधसे माता-पिताको बहुत अधिक व्यथा होती, यह बात सहज ही समझमें आने योग्य है ।

शरणागतवत्सल, निज जन परित्राता श्रीहरिके अवतार ले लेनेके पश्चात् उनके अग्रजोंको कंस मार देता—यह बात भी उन निखिलब्रह्माण्ड-नायकके लिये अशुभ ही बनती।

उन शिशुओंका मंगल था इसीमें और कंसका भी इसीमें मंगल था कि उसका दारुण-अत्याचार बढ़े तो श्रीहरिको आनेकी त्वरा हो। उनके विना कंसका उद्धार तो सम्भव नहीं था। देवर्षिका तो व्रत है कि जो मिले उसका जैसे भी हो, उद्धार करना।

—❀❀—

शिशु-हत्या

'सेनापतिको कहो, सन्नद्ध रहें।' देवर्षिके जाते ही कंस अपने भवनसे निकला। उसने द्वारपालको आदेश दिया—'एक टुकड़ी मुझे अविलम्ब वसुदेवके भवनपर चाहिये। शेष सेना भी सज्जित मिले मुझे।'

द्वारपाल अभिवादन करके चला गया। कंस अपने रथपर वैठा और उसने सारथिसे रथ वेगपूर्वक चलानेको कहा।

'कंस कहाँ जा रहा है ?' नागरिकोंमें अभी वसुदेवजीकी प्रशंसा ही हो रही थी। 'वसुदेवजी अपने पुत्रको कंसके समीप ले गये और उसने लौटा दिया शिशुको—तो भी शान्त ही लौटे। अब तक उनके भवनसे मङ्गल-गान अथवा वाद्यकी ध्वनि नहीं उठी। वात क्या है ? कंसने क्या कहा उनसे ?' अनेक तर्क-वितर्क नागरिकोंमें चल रहे थे।

'कंस वसुदेवजीके भवनकी ओर इतने वेगसे रथ क्यों ले जा रहा है ?' नागरिक चौंके—'इतनी-सी देरमें क्या नवीन बात हो गयी ?' कुछ कुतूहलवश चल पड़े वसुदेवजीके सदनकी ओर ; किन्तु इन्हें पैदल जाना था और कंसका रथ तो जैसे उड़ा जा रहा था।

वसुदेवजीको कठिनाईसे कुछ क्षण हुए थे शिशुको सूतिकागृहमें देकर लौटे कि कंसका रथ उनके द्वारपर रुका और उससे कंस कूदा।

'युवराज !' वसुदेवजी शीघ्रतापूर्वक उठ खड़े हुए ; किन्तु कंसने उनकी ओर देखा तक नहीं। वह उसी गतिसे अन्तःपुरमें चला गया।

अङ्गार जैसे जलते नेत्र, अत्युग्र भृकुटि, भयङ्कर भङ्गी और इतनी त्वरा—एक ही दृष्टिमें वसुदेवजीने जो कुछ देखा, उससे समझ गये कि कंस कोई अनर्थ ही करने आया है ; किन्तु उन्हें कुछ भी करने-कहनेका अवकाश कहाँ मिला।

कंसके लिये अन्तःपुरका कोई भाग अपरिचित नहीं था। यहाँ वह अनेक बार आया था। उसकी रानियोंने देवकीजीके सूतिकागृहका पहिले ही पूरा परिचय उसे दे रखा था। वह अन्तःपुरमें बिना किसी ओर देखे सीधे सूतिकागृह पहुँचा।

महिलायें ही थीं वहाँ और उनमें भी अधिकांश कंसकी सगी या चचेरी बहिनें। दासियाँ उस कक्षसे बाहर थीं और वे कंसको इतने वेगसे आते देख हतबुद्धि हो गयी थीं—जहाँ-तहाँ ठिठक गयी थीं।

कंसको देखते ही सूतिका-गृहकी महिलायें हड़बड़ीमें पड़ गयीं। वे ठीक प्रकारसे एक ओर भी हट नहीं सकी थीं कि उनके मध्यसे उनको लगभग धक्का-सा देता कंस भीतर घुसा।

'भैया !' माता देवकीने तो कंसको तब देखा जब झपटकर उनकी गोदसे पैर पकड़कर शिशुको उसने छीन लिया और लौट पड़ा था। एक आर्त चीत्कार—असहाय अबला और क्या कर सकती थी। माता उठते-उठते गिरकर मूर्छित हो गयीं।

महिलायें हतप्रभ खड़ी रह गयीं। कोई कुछ सोचे-समझे, इतना अवसर ही कहाँ मिला। कंस शिशुको लिये सूतिका-गृहसे बाहर आया और वहाँ उस पिशाचने चरणोंसे पकड़े उस नवजातशिशुको घुमाकर एक शिलापर पटक दिया। शिशुका नन्हासा सिर चूर-चूर हो गया। शिला रक्तसे लथपथ हो गयी। कंसके वस्त्रोंपर रक्तके छींटे उसके पापकी साक्षी बन गये।

वहीं शिशुका शव हाथसे फेंककर कंस वसुदेवजीके सम्मुख आ खड़ा हुआ। अब उसने खड्ग खींच लिया था—'तुम बन्दी किये गये।' देवकी भी। उसे पुकार लो और चुपचाप रथपर बैठो, भयंकर स्वरमें आज्ञा दी उसने।

'अच्छा युवराज !' वसुदेवजीने कोई प्रतिवाद नहीं किया। जो कुछ हो चुका था, उसे उन्होंने देख लिया था और यह इतना समझनेको पर्याप्त था कि इस समय कंससे कुछ कहना व्यर्थ है।

'देवकीको ले आओ !' वसुदेवजीने प्रांगणमें आ गयी महिलाओंकी ओर देखकर कहा। अब तक उनमें-से किसीके कण्ठसे चीत्कार तक नहीं निकला था। भयने उन्हें लगभग जड़ बना दिया था।

यन्त्र-चालितकी भाँति उनमें कई भीतर मुड़ गयीं। हाथोंपर उठाकर लायी गयी देवकीजीको उसी मूर्छितावस्थामें उन्होंने द्वारपर खड़े रथपर वसुदेवजीके संकेतके अनुसार रख दिया। वसुदेवजी स्वयं रथपर बैठ गये तब कंस बैठा।

'कारागार !' कंसने सारथिको आदेश दिया और उसी दिन सूर्यास्तसे पूर्व ही वे भुवनवन्द्य दम्पत्ति मथुराके कारागारमें पहुँचा दिये गये। सद्यःप्रसूता, मूर्छिता, रक्ताक्तअङ्गा माता देवको असहायावस्थामें उस कारागारके कक्षमें पहुँचायी गयीं—वसुदेवजीने ही उन्हें अङ्कमें उठा-कर पहुँचाया। तब भी वे मूर्छिता ही थीं; किन्तु कंसको अब देवकीजीके जीवनकी कहाँ चिन्ता थी।

'तुम यदि यहाँ शान्त रहे' कंस अब वसुदेवजीको 'आप' कहनेकी शिष्टता भूल चुका था—उसने कहा—'तो तुम्हें कोई कष्ट नहीं दिया जायगा। अभी यहाँ राजपुरुष और सेविकायें आवेंगी। वे तुम्हारे लिये सब आवश्यक प्रबन्ध कर देंगी। आवश्यक सामग्री यहाँ आ जायगी। तुम्हारी पत्नियाँ यहाँ तुमसे मिलने आ सकेंगी; किन्तु केवल तुम्हारी पत्नियाँ।'

'युवराज !' वसुदेवजीने कठिनाईसे अपनेको कुछ कहनेको प्रस्तुत किया।

'नहीं' कंसने कुछ कहने नहीं दिया—'इस समय तुम्हारी और कोई बात नहीं सुननी है। तुम जानते हो कि नगरमें तुम्हारे बहुत सहायक हैं। मुझे देखना है कि वे कोई उत्पात न करें। तुम शान्त बने रहे तो तुम्हारी प्रार्थना भी सुन लूँगा पीछे।'

कंस तत्काल लौट गया। कारागारका कठोर द्वार बन्द हो गया। वसुदेवजी मूर्छिता देवकीके समीप मस्तकपर दोनों हाथ रखकर भूमिपर—उस धूलिभरे कक्षकी भूमिपर, जिसपर त्रिभुवनेश्वरकी भावी जननी उनकी सहधर्मिणी अचेत पड़ी थी—धम् से बैठ गये।

———

महाराज उग्रसेन भी बन्दी बने

'कंसने वसुदेवजीके शिशुका वध कर दिया ।' सूखे मूँजवनमें लगी दावाग्निके समान यह समाचार मथुरामें शीघ्र फैल गया—'वसुदेव और देवकीको उसने कारागारमें बन्द कर दिया है।'

'कंसको बन्दी बनाओ !' महाराज उग्रसेनने सुना तो क्रोधसे काँपते हुए आज्ञा दी—'यादव राजसभा उसका न्याय करेगी।'

जबसे कंसने देवकीपर हाथ उठाया था—महाराजने उसी दिनसे उससे बोलना बन्द कर दिया था। कंसने भी पिताकी उपेक्षा कर दी थी। वह महीनोंसे उनके सम्मुख नहीं आया था।

यादवगण अत्यन्त उत्तेजनामें थे। प्रायः युवकों और तरुणोंने शस्त्र उठा लिया था। महाराज उग्रसेनके समीप उनके समूह एकत्र हो रहे थे। यह सब समझ रहे थे कि कंस राजाज्ञा मात्रसे बन्दी नहीं बनाया जा सकता। सेनापर उसका पूरा प्रभुत्व था।

कंस प्रमत्त नहीं था। कारागारसे निकलते ही उसने जो सैनिक टुकड़ी वसुदेवजीके भवनपर बुलायी थी, उसके थोड़े-से सैनिक भवनपर छोड़कर शेषको उसने कारागारकी रक्षाके लिये भेजा।

'केवल मेरा आज्ञापत्र लेकर ही कोई कारागारमें प्रवेश कर सकता है।' सैनिकोंको उसने कठोर स्वरमें समझा दिया—'दूसरे किसीकी आज्ञा तुम्हें नहीं सुननी है।'

'आपको बन्दी बनानेकी आज्ञा महाराजने दी है।' मार्गमें अश्व दौड़ाकर आता कंसका एक अंग-रक्षक मिला। उसने समाचार दिया।

'सेनापतिको समाचार दो कि मैंने आज्ञा दी है कि राजभवन घेर लिया जाय।' कंसने तत्काल अंग-रक्षकको दौड़ाया।

महाराज उग्रसेनको और उनके अंग-रक्षकों तथा यादव-तरुणोंको राजद्वारसे बाहर आनेका अवकाश नहीं मिला। सेना पहिलेसे कंसका आदेश पाकर सन्नद्ध थी। आज्ञा मिलते ही राजभवनपर सेनापतिने घेरा डाल दिया।

'उग्रसेनको बन्दी करो।' कंसने पहुँचते ही दहाड़कर सेनापतिको आज्ञा दी। अब उसमें पिताका कोई संकोच शेष नहीं रहा था।

वहीं युद्ध आरम्भ हो गया। कंसके असुर सेनानायक राजसभाके द्वारमें घुस जाना चाहते थे और यादव-तरुण प्राणपणसे उन्हें रोकनेमें लगे हुए थे। कुलकाल कंस इस भयंकर युद्धको देखता रहा अपने ही रथमें बैठा

हुआ, लेकिन बहुत थोड़े काल तक। उसमें प्रतीक्षा करनेका धैर्य नहीं था। उसने देख लिया रथपरसे ही कि महाराज स्वयं खड्ग लिये आगे बढ़ रहे हैं। उसके असुर-नायक आहत होकर भी जनपर आघात करनेमें हिचक रहे हैं।

रथसे कंस कूदा और उसने गदा उठा ली । उसके अपने सैनिकोंने हटकर उसे मार्ग दे दिया। स्थिति सर्वथा विपरीत हो गयी। यादव तरुणों-पर कंसका निर्मम गदाघात उन्हें धराशायी करने लगा; किन्तु वे शूर असुर सैनिकोंपर जिस उत्साहसे आघात कर रहे थे, अपने ही राजकुमारपर उस प्रकार उनके हाथ उठ नहीं पा रहे थे। उन्होंने भी लगभग हटकर ही कंसको मार्ग दिया।

कंसने पितापर हाथ उठानेमें कोई संकोच नहीं किया । उसने महाराजकी दक्षिण भुजापर गदा चलायी। अघात लगनेसे महाराजके हाथ-से खड्ग छूटकर दूर जा गिरा ।

'तू मेरा पुत्र नहीं है।' अब महाराजकी दृष्टि सम्मुख गदा लिये खड़े कंसपर पड़ी ।' वे पूरे तेजस्वी स्वरमें बोले—'मैंने तेरा त्याग किया। नराधम ! तू वध कर मेरा !' अपने हाथसे महाराजने राजमुकुट उतार फेंका और श्वेतकेश मंडित मस्तक झुका दिया।'

'बन्दी करो इसे !' कंस बिना हिचक चिल्लाया, किन्तु कोई असुर भी महाराजको बन्दी करनेका सहास नहीं कर सकता था। कोई आगे नहीं बढ़ा।

'चुपचाप आगे बढ़ो।' कंसने क्रोधपूर्वक चारों ओर देखा और स्वयं उसने बायें हाथसे पिताका हाथ पकड़ा । उन्हें लगभग घसीटता-सा वह द्वारकी ओर बढ़ा।

महाराजके अंगरक्षकों और यादव-तरुणोंके शव बिछ गये थे वहाँ चारों ओर। सम्पूर्ण सभा-भवन रक्तसे लथपथ हो रहा था। सेनाने विजय प्राप्त कर ली थी और आहत अथवा शेष बचे विपक्षी शूरोंको क्रूर असुर समाप्त करनेमें लगे थे।

कंसको मार्गमें रोकने वाला अब कहीं कोई नहीं था । उसके असुर सेनानायक उसके दोनों पार्श्वमें शस्त्र उठाये चलने लगे थे।

उसी रथपर जिसपर वसुदेव-देवकीको कंसने कारागार पहुँचाया था, उग्रसेनजीको उसने बलपूर्वक बैठा दिया । उसी दिन सूर्यास्त होते-होते कारागारका द्वार फिर खुला और उसके दूसरे भागमें महाराज उग्रसेनको कंसने स्वयं उतारकर बन्द किया।

—*×*—

अपने सम्मानित ले...

'श्रीकृष्ण-सन्देशको' आपका उदार सहयोग तथा स...
और मुझे विश्वास है कि यह सहयोग सदा प्राप्त रहेगा। इसलि...
योग्य हैं। इसलिए कि 'श्रीकृष्ण-सन्देश आपका अपना पत्र है। क्योंकि...
अपने हैं और यह पत्र उनके जन्म-स्थानका मुख-पत्र है—उनकी परम...
स्थलीका सन्देशवाहक है। यह उन मयूरमुकुटी भारतके शाश्वत राष्ट्रपुरुष...
का स्मारक है।

श्रीकृष्ण-सन्देश अपने लेखकोंको आर्थिक पुरस्कार नहीं दे सकता। य...
स्थिति—आर्थिक स्थिति तथा भावनात्मक स्थितिके कारण भी शक्य नहीं है।...
प्रतिभाशाली विद्वान इतने भाव-कङ्गाल नहीं हो गये हैं कि जिस पूर्ण पुरुषने वि...
गीताका दिव्यालोकदान किया, जिस रसराजका स्मरण सहृदयजनोंका सर्वस्व है, उ...
की जन्मस्थलीके पत्रको अपनी प्रतिभाके पुष्पोंकी अञ्जलि अर्पित करनेमें प्रतिदानकी
माँग या आशा करें। कोई ऐसा सोचता हो तो यह उसीकी अज्ञता है। अतः किसी
भी भावप्राणकी श्रद्धाकी अवमानना सोचनेकी भी बात नहीं।

लेकिन आपकी शब्द-सुमनाञ्जलि प्रकाशन प्राप्त कर सके इसके लिये कुछ बातें आपकी सेवामें निवेदित करनी हैं। वैसे सार्थक तो वह तभी होगयी जब आपके मनमें मूर्त हुई। श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें अर्पित होकर कुछ असार्थक नहीं रह जाता; किन्तु प्रकाशनके लिये आप हमारी प्रार्थना पर ध्यान देंगे तो कृपा होगी।

१—श्रीकृष्ण-सन्देश आध्यात्मिक धार्मिक पत्र है। अतः इसमें किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, जाति या व्यक्तिपर आक्षेपयुक्त लेख, खण्डन-मण्डनके विवादसे युक्त लेख नहीं लिये जा सकते।

२—यह न शोध-पत्रिका है, न ऐतिहासिक या साहित्यिक पत्र। अतः सनातन-धर्म पर आस्था रखनेवाले समुदायका ध्यान तो हमें रखना ही होगा। केवल शोध या कोरा साहित्य लिया जा के ऐसी स्थिति नहीं है।

३—क्योंकि अब विस्तृत 'श्रीकृष्ण-चरित' कई वर्ष जाता रहेगा—पत्रके प्रत्येक अङ्कमें केवल १६ पृष्ठ रहते हैं लेखादि के लिये। इससे हम लम्बे लेख तथा कवितायें लेने में [illegible] विवेचनात्मक सामग्री देनेमें असमर्थ होगये हैं।

४—दोसे तीन पृष्ठ मात्रके छोटे लेख, रोचक विवेचन, घटनायें, कथायें संस्मरणोंका हम स्वागत करेंगे।

५—जो आपकी रचना अन्यत्र छप चुकी है या छपनेको भेजी गयी है, उसे भेजनेका कष्ट न करें।

—सम्पादक

आजीवन ग्राहकोंके लिये

जहाँ ग्राहक-संख्याके साथ 'आ' अक्षर या 'L. S.' लिखा है वहाँ वे यह स्मरण रक्खें कि वे आजीवन-ग्राहक हैं। उनको और कोई शुल्क कभी नहीं भेजना है। आजीवन-ग्राहक यदि अपने जीवन-कालमें अपनी जगह दूसरेका नाम ग्राहकमें देना चाहें या अपने जीवनके बाद अपनी जगह श्रीकृष्ण-सन्देश पानेका अधिकार अन्य किसीको देना चाहें तो उनका नाम मनोनीत करनेका उनको अधिकार होगा। नये मनोनीत व्यक्ति या उत्तराधिकारीको भी वैसा ही अधिकार होगा जो मूल ग्राहकको रहा है। इस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके वंशके किसी एक व्यक्तिको श्रीकृष्ण-सन्देश पानेका अधिकार रहेगा। भगवानकी ऐसी लीला हो जाय कि कभी श्रीकृष्ण-सन्देशको बन्द करनेकी परिस्थिति आ जाय तो आजीवन-ग्राहकोंका शुल्क उनकी तरफसे श्रीकृष्ण-जन्मस्थानकी सेवामें लगा दिया जायेगा।

—व्यवस्थापक